યુક્રાંદ

शीघ्र प्रकाशित

प्रेमी साधकों को खुशखबरी

आचार्य श्री की साधना

जगत् की

अमूल्य कृतियाँ

(१) सत्य की पहली किरण

(२) प्रभु की पगडंडिया

(३) सत्य का सागर शून्य की नाव

मुखपृष्ठ छायाकृतियाँ : द्वारका साधना शिविर से श्री पुष्कर भाई गोकाणी के सौजन्य से

श्रा.सं.-१५४७

पथ के प्रदीप

(एक बोध कथा)

एक दिन मैं सुबह सुबह उठकर बैठा ही था कि कुछ लोग आ गये। उन्होंने मुझसे कहा: "आपके संबंध में कुछ व्यक्ति बहुत आलोचना करते हैं। कोई कहता है: आप नास्तिक हैं। कोई कहता है: अधार्मिक। आप इन सब व्यर्थ की बातों का उत्तर क्यों नहीं देते?" मैंने कहा: "जो बात व्यर्थ है, उसका उत्तर देने का सवाल ही कहां? क्या उत्तर देने योग्य मानकर हम स्वयं ही उसे सार्थक नहीं मान लेते हैं?" यह सुनकर उनमें से एक ने कहा: "लेकिन लोक में गलत बात चलने देना भी तो ठीक नहीं।" मैंने कहा: "ठीक कहते हैं। लेकिन जिन्हें आलोचना ही करना है, निन्दा ही करनी है, उन्हें रोकना कभी भी संभव नहीं हुआ है। वे बड़े आविष्कारक होते हैं और सदा ही नये मार्ग निकाल लेते हैं। इस संबंध में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं।" और जो कथा मैंने उनसे कही थी, वही मैं आपसे भी कहता हूं।

पूर्णिमा की रात्रि थी। और शुभ ज्योत्सना में सारी पृथ्वी डूबी हुई थी। शंकर और पार्वती अपने प्यारे नंदी पर सवार होकर भ्रमण को निकले थे। किन्तु वे जैसे ही थोड़े आगे गये कि कुछ लोग उन्हें मार्ग में मिले। उन्हें नंदी पर बैठे देखकर उन लोगों ने कहा: "देखो बेशर्मों को। बैल की जान में जान नहीं है और दो दो उसपर चढकर बैठे हैं।" उनको यह बात सुनी तो पार्वती नीचे उतर गई और पैदल चलने लगीं किन्तु थोड़ी ही दूर जाने पर फिर कुछ लोग मिले। वे बोले: "अरे, मजा तो देखो। सुकुमार अबला को पैदल चलाकर यह कौन बैल पर बैठा चला जा रहा है। भाई! बेशर्मी की भी हद है।" यह सुनकर शंकर नीचे उतर आये और पार्वती को नंदी पर बैठा दिया। लेकिन कुछ ही कदम गये होंगे कि फिर कुछ लोगों ने कहा: "कैसी बेहया औरत है, पति को पैदल चलाकर खुद बैल पर बैठी है। मित्रो, कलियुग आ गया है।' ऐसी स्थिति देख आखिर दोनों ही नंदी के साथ पैदल चलने लगे। किन्तु थोड़ी ही दूर न जा पाये होंगे कि कुछ लोगों ने कहा: "देखो, मूर्खों को! इतना तगड़ा बैल साथ में है और ये पैदल चल रहे हैं।" अब तो बडी कठिनाई हो गई। शंकर पार्वती को कुछ भी करने को शेष न रहा। नंदी को एक वृक्ष के नीचे रोक वे विचार करने लगे, अबतक नंदी चुप था। अब वह हँसा और बोला: "एक रास्ता मैं बताऊँ? अब आप दोनों मुझे अपने सिरों पर उठा लीजिये।" यह सुनते ही शंकर पार्वती को होश आया और वे दोनों फिर नंदी पर सवार हो गये। लोग फिर भी कुछ न कुछ कहते निकलते रहे। असल में लोग

बिना कुछ कहे निकल भी कैसे सकते हैं ? लेकिन अब शंकर पार्वती चांदनी की सैर का आनन्द लूट रहे थे और भूल गये थे कि मार्ग पर कोई और भी निकल रहा है।

जीवन में यदि कहीं पहुंचना हो तो राह में मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति की बात पर ध्यान देना आत्मघातक है।

और यह भी स्मरण रहे कि जो स्वयं के विवेक से नहीं चलता है, उसकी गति हवा के झोकों में उड़ते सूखे पत्तों की भांति हो जाती है।

●●●

सन्यास : मेरी दृष्टि में

मैं संन्यासी को जीवन सौन्दर्य की परमावस्था कहता हूं।
वहीं सत्य के फूल खिलते हैं।
और शिवत्व की सुगंध भी जन्मती है।
इसीलिये मैं सन्यासी में ही जीवन की परम सार्थकता और धन्यता को देखता हूं।
जिसने संन्यास नहीं जाना, उसने जीवन भी नहीं जाना।
जीवन को जानते ही वे हैं, जो जीवन को मुक्ति बना लेते हैं।
संन्यास का अर्थ है ऐसा जीवन जो बंधन नहीं है।
लेकिन तथाकथित संन्यासियों के गिरोहों ने संन्यास को भी बंधनों की एक शृंखला बना लिया है।
गृहस्थ है कुआं तो संन्यस्थ है खाई।

●

दुख कहाँ है ?

जीवन से अपेक्षा करने में दुख है।
जीवन से कुछ मांगा–चाहा कि दुख आया।
इसलिए न मांगो कुछ न चाहो कुछ-बस जो कुछ मिल जाये उसे अनुग्रह पूर्ण स्वीकार करो।
और जो मिलता है–मिला है–वह क्या कम है ?
लेकिन, मन मिले को देखता ही नहीं है।
वह तो देखे जाता है उसे ही जो कि नहीं है।
और इस भांति हम स्वयं ही स्वयं को दुख के गढ़े में ढकेले चले जाते हैं।
मन की इस वृत्ति के अतिरिक्त और कोई तर्क नहीं है।
जो मिला है, उसे देखो–प्रेम–करो–जियो।
और तब स्वर्ग अपने आप द्वार पर ही आ जाता है।

●●

मृत्यु पर विजय

[द्वारका में आचार्य श्री का दिया गया एक प्रवचन : २८-१०-१९६९]

संकलन : श्री पुष्कर भाई गोकाणी, द्वारका

जिसे हम जान लेते हैं उससे हम मुक्त हो जाते हैं और जिसे हम जान लेते हैं उसे हम जीत भी लेते हैं। हमारी हार और पराजय हमारे अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अंधकार है इसलिए पराजय है, प्रकाश है तो पराजय असंभव है। प्रकाश विजय बन जायेगी। मृत्यु के संबंध में पहली बात आप से यह कहना चाहूंगा कि मृत्यु से अधिक असत्य और कुछ भी नहीं है लेकिन मृत्यु ही सत्य मालूम होती है, न केवल सत्य मालूम होती है बल्कि जीवन का केन्द्रीय सत्य भी वही मालूम होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि सारा जीवन मृत्यु से घिरा हुआ है और चाहे हम भूल जाते हों, भुला देते हों लेकिन फिर भी मृत्यु चारों तरफ निकट ही खड़ी रहती है। अपनी छाया से भी ज्यादा मृत्यु अपने पास है। जीवन का जो रूप हमने दिया है वह भी मृत्यु के भय के कारण ही दिया है। मृत्यु के भय ने समाज बनाया है, परिवार बनाये हैं, मित्र इकट्ठे किये हैं। मृत्यु के भय ने धन इकट्ठे करने की दौड़ दी है, मृत्यु के भय ने पदों की आकांक्षा दी है और सबसे बड़ा आश्चर्य कि मृत्यु के भय ने हमारे भगवान और हमारे मंदिर भी खड़े कर दिये हैं। मृत्यु से भयभीत घुटने टेक कर प्रार्थना करते हुए लोग हैं। मृत्यु से भयभीत आकाश की तरफ परमात्मा की तरफ हाथ जोड़े हुए लोग हैं और मृत्यु से ज्यादा असत्य कुछ भी नहीं है इसीलिए मृत्यु को सत्य मानकर हमने जो भी जीवन की व्यवस्था की है वह असत्य हो गयी है लेकिन मृत्यु का असत्य हमें कैसे पता चले, यह हम कैसे जान पायें कि मृत्यु नहीं है और जब तक हम यह न जान पायें तब तक हमारा भय भी विलीन नहीं होगा और जबतक हम यह न जान पायें कि मृत्यु असत्य है तब तक जीवन हमारा सत्य नहीं हो सकता है। जब तक मृत्यु का भय है तब तक जीवन सत्य नहीं हो सकता है और जब तक मृत्यु से डरेंगे, कंपते रहेंगे तब तक जीवन के जीने की क्षमता भी हम नहीं जुटा पायेंगे। जीवन को सिर्फ वे ही जी सकते हैं जिसके सामने से मृत्यु की छाया विदा और विलीन हो गई है। कंपता हुआ मन कैसे जियेगा, डरा हुआ मन कैसे जियेगा ? और मौत जब प्रतिपल आती हुई मालूम पड़ती हो तो हम कैसे जियेंगे, हम कैसे जी सकते हैं ? और हम कितना ही भुला रखें मृत्यु को वह भूली नहीं रहती। मरघट हम गांव के बाहर बनायें तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, वह दिखायी पड़ेगा। रोज कोई न कोई मरता है, रोज कहीं न कहीं मृत्यु घटित होती है और हमारे जीवन की सारी की सारी नींव हिल जाती है और प्रत्येक बार जब भी मृत्यु घटती हुई दिखायी देती है तब हम जानते हैं कि मैं भी मरूंगा। जब हम किसी की मृत्यु पर रोते हैं तब हम सिर्फ उसको मृत्यु पर ही नहीं रोते अपनी मृत्यु की खबर पर भी रोते हैं। और जब हम दुखी और पीड़ित होते हैं दूसरे की मृत्यु देखकर तब हम दूसरे की मृत्यु देखकर ही दुखी और पीड़ित नहीं होते, उसमें हमारे मरने की संभावना भी प्रगट हो गयी है। हर मृत्यु हमारी मृत्यु भी है और जब तक हम घिरे रहें तबतक कैसे जी सकेंगे ? तब तक जीना असंभव है। तब तक हमें जीवन का पता भी नहीं चल सकता, न उसके आनंद का, न उसके सौंदर्य का, न

उसके रस का। तब तक जीवन का जो परम सत्य है परमात्मा, उसके मंदिर के द्वार पर भी हम नहीं पहुंच सकते।

मृत्यु के भय ने एक तरह के मंदिर निर्मित किये हैं। वे परमात्मा के मंदिर नहीं हैं और मृत्यु के भय से एक तरह की प्रार्थनाएं निर्मित हुई हैं, वह भी परमात्मा की प्रार्थनाएं नहीं हैं। परमात्मा के मंदिर पर तो वह पहुंचता है जो जीवन के आनन्द में परिपूरित हो जाता है और परमात्मा की सीमा, जीवन के सौंदर्य और जीवन के रस से भरी हुई है और परमात्मा के द्वार की घंटियां सिर्फ उनके लिए बजती हैं जो सब तरह के भय से मुक्त होकर अभय हो जाते हैं। तब तो बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती है। हम मृत्यु से भरे हुए जीना चाहते हैं। ऐसा कभी भी नहीं हो सकता है, दो में से एक ही बात सत्य हो सकती है। ध्यान रहे, यदि जीवन सत्य है तो मृत्यु सत्य नहीं हो सकती और अगर मृत्यु सत्य है तो जीवन सिर्फ एक सपना होगा, झूठा होगा, वह सत्य नहीं हो सकता है। ये दोनों बातें एक साथ होनी असंभव हैं। लेकिन हमने इन दोनों बातों को एक साथ पकड़ रखा है। ऐसा भी लगता है कि हम जीते हैं और ऐसा भी लगता है कि हम मरे हैं।

मैंने सुना है कि किसी दूर पहाड़ी की तलहटी के पास एक फकीर का निवास था। लोग उसके पास बहुत सी बातें पूछने चले जाते थे। एक बार उससे एक आदमी पूछने गया है कि हमें जीवन के और मृत्यु के संबंध में कुछ बताओ। उस फकीर ने कहा, अगर जीवन के संबंध में जानना हो तो स्वागत है, द्वार खुले। मृत्यु के संबंध में जानना हो तो कहीं और जाओ। मैं न तो कभी मरा हूं और न कभी मर सकता हूं। मृत्यु का मुझे कोई अनुभव नहीं है। अगर मृत्यु के संबंध में जानना हो तो उनसे पूछो जो मर चुके। लेकिन तब वह फकीर हंसने लगा और कहा कि तब उनसे तुम पूछोगे कैसे जो मर ही चुके हैं। उसके पूछने का भी कोई उपाय नहीं है। और उस फकीर ने यह भी कहा कि अगर तुम मुझसे यह पूछो कि किसी मरे हुए का पता ठिकाना दे दो तो भी नहीं दे सकता, क्योंकि जबसे मुझे यह पता चला है कि मैं नहीं मर सकता हूं तबसे मुझे यह भी पता चल गया है कि कोई कभी नहीं मरता है। कोई मरा ही नहीं है उस फकीर ने कहा। कैसे हम मानें उसकी बात, हम तो रोज किसी को मरते देखते हैं। रोज मृत्यु घटित होती है। मृत्यु बड़ा सत्य है, प्राणों को छेद कर दिखायी पड़ती है। आंखें बन्द करें, कितनी ही दूर हों, दिखायी पड़ती है, कितना ही भागें और बचें वह तो हमें घेर ही लेती है। इस सत्य को कैसे झुठला दें। कुछ लोग झुठलाने की कोशिश भी करते हैं। कुछ लोग मृत्यु से भय के कारण ही यह मान लेते हैं कि आत्मा अमर है। जानते नहीं हैं, सिर्फ मान लेते हैं। रोज सुबह उठकर दोहरा रहे हैं, मंदिरों में बैठकर, मस्जिदों में बैठकर कि कोई नहीं मरता है, आत्मा अमर है। और वे इस भ्रम में हैं कि बार बार दोहराने से आत्मा अमर हो जायेगी और शायद वे इस ख्याल में हैं कि बार बार दोहराने से मौत को झूठा किया जा सकता है। मौत झूठी नहीं होती है दोहराने से, सिर्फ जानने से झूठी हो सकती है। ध्यान रहे, यह बहुत आश्चर्य की बात है, हम जिस बात को दोहराते हैं उससे विपरीत को हम सदा स्वीकर करते हैं। जब एक आदमी कहता है कि मैं अमर हूं, आत्मा अमर है और दोहराता है तब इस बात का पता देता है कि भीतर वह जानता है कि मैं मरूंगा, मुझे मरना पड़ेगा। अगर वह यह जानता है कि मैं मरूंगा नहीं तो इस बात को दोहराने की कोई जरूरत नहीं है। इसे सिर्फ दोहराता वही है जो डरा हुआ है। इसलिए यह दिखायी पड़ेगा कि जो देश, जो समाज आत्मा की अमरता की बातें करते हैं उनसे ज्यादा मौत से डरने वाले लोग खोजने कठिन हैं। यह हमारा ही देश है जो आत्मा की अमरता की बात करते थकता नहीं है लेकिन फिर भी हमसे ज्यादा मौत से कोई डरता है इस पृथ्वी पर ? हमसे ज्यादा मौत से कोई भी नहीं डरता है। इन दोनों बातों में कैसे ताल मेल बैठेगा। आत्मा को जो अमर मानते हैं उनके गुलाम होने को कभी

संभावना है ? वे मर सकेंगे, मरने के लिए तैयार रहेंगे क्योंकि वे जानते हैं कि मृत्यु है ही नहीं। जो जानते हैं कि जीवन अमर है, आत्मा अमर है वे पहले चांद पर उतरेंगे, वे पहले एवरेस्ट पर चढ़ेंगे, वे पहले प्रशांत महासागर की गहराइयों में उतरेंगे। नहीं, हम उनमें से नहीं हैं। न हम एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ते हैं, न हम चांद पर उतरते हैं, न हम हिन्द महासागर की गहराइयों में जाते हैं और हम आत्मा को अमर मानने वाले लोग हैं। हम असल में इतने डरते हैं मृत्यु से कि उसी डर के कारण आत्मा अमर है इसको भी दोहराते रहते हैं और हमें यह भी भ्रम है कि शायद बार बार दोहराने से जो हम दोहरा रहे हैं, वह सच हो जायगा। दोहराने से कोई भी बात सच नहीं हो सकती। मृत्यु नहीं है, ऐसा दोहराने ने मृत्यु नहीं, नहीं हो जायगी। मृत्यु को जानना पड़ेगा कि क्या है, मृत्यु का साक्षात्कार करना पड़ेगा कि मृत्यु क्या है। मृत्यु को आंखों के सामने खड़ा करना पड़ेगा, देखना पड़ेगा, जानना पड़ेगा और हम सब तो मृत्यु की तरफ पीठ करके भागते हैं तो मृत्यु को देख कैसे सकेंगे। हम सब तो मृत्यु की आंख बन्द कर लेते हैं। बाहर कोई मुर्दा हो रास्ते पर किसी की लाश निकलती हो तो मां अपने बेटे को घर के भीतर बन्द कर लेती है और कहती है, मत जाओ, कोई मर गया है। मरघट इसीलिए गांव के बाहर बनाते हैं ताकि वह बार बार दिखायी न पड़े। मौत सामने सामने न आ जाय। अगर किसी से मरने की बात करो तो वह कहेगा, ये बातें मत करिये।

एक संन्यासी के साथ मैं कुछ दिन तक ठहरा हुआ था। वे संन्यासी रोज आत्मा की अमरता की बात चलाते थे। मैंने उनसे कहा, कभी आप यह भी सोचते हैं कि आपके मरने का दिन करीब आ रहा है, तो उन्होंने कहा, ऐसी अपशकुन की बातें मत करिये, यह बात ही मत करिये। मैंने उनसे कहा, जो आदमी कहता है, आत्मा अमर है, उसे मृत्यु की बात में अपशकुन दिखायी पड़े तो बड़ी गड़बड़ होगी। मृत्यु की बात में तो उसे कोई भय, और कोई भी अपशकुन और कोई बुराई नहीं दिखायी पड़नी चाहिए क्योंकि मृत्यु तो उसके लिए है ही नहीं। उन्होंने कहा, हां, आत्मा अमर है फिर भी मैं मृत्यु के बाबत कुछ बात करने को नहीं रखता हूं। ऐसी बेकार की बातें नहीं करनी चाहिए। ऐसी खतरनाक बातें नहीं करनी चाहिए। हम भी यही कर रहे हैं और मृत्यु की तरफ पीठ करके भागे हुए हैं।

मैंने सुना है कि एक गांव में एक आदमी को एक बड़ा पागलपन सवार हो गया। एक रास्ते से गुजर रहा था। भरी दोपहरी थी, अकेला रास्ता था, निर्जन था। तेजी से चल रहा था कि निर्जन में कोई डर न हो जाय। हालांकि डर वहां होगा जहां कोई और है, जहां कोई भी नहीं है वहां डर का क्या उपाय हो सकता है लेकिन हम वहां डरते हैं जहां कोई भी नहीं होता है। असल में हम अपने से ही डरते हैं और जब हम अकेले रह जाते हैं तो बहुत डर लगने लगता है। हम अपने से जितना डरते हैं उतना किसी से भी नहीं डरते इसलिए कोई साथी हो, कोई भी साथ हो तो डर कम लगती है और बिल्कुल अकेले रह जाते हैं तो बहुत डर लगने लगता है। वह आदमी अकेला था और डर गया और भागने लगा। सन्नाटा था, सुनसान था, दोपहर थी, कोई भी न था। जब वह तेजी से भागा तो अपने ही पैरों की आवाज उसे पीछे से आती हुई मालूम पड़ी। वह डरा कि शायद कोई पीछे है। फिर उसने डरे हुए चोरी की आंख से पीछे झांककर देखा तो एक लंबी छाया उसका पीछा कर रही थी वह उसकी अपनी ही छाया थी लेकिन यह देखकर कि कोई लंबी छाया उसके पीछे पड़ी हुई है, वह और भी तेजी से भागा। फिर वह आदमी कभी रूका नहीं होगा मरने के पहले क्योंकि वह जितनी तेजी से भागा छाया उसके पीछे उतनी तेजी से भागी। फिर वह आदमी पागल हो गया। लेकिन पागलों को पूजने वाले भी मिल जाते हैं। जब वह गांव से भागता हुआ निकलता और लोग देखते कि वह भागा हुआ जा रहा है तो लोग समझते कि वह बड़ी तपश्चर्या में रत है, वह कभी रूकता नहीं। वह सिर्फ रात के अंधेरे में रूकता है जब छाया खो जाती थी तब वह सोचता था

कि डर कोई पीछे नहीं है। सुबह हुई और वह भागना शुरू कर देता था। फिर तो बाद में वह रात में भी रूकना बन्द कर दिया। उसे ऐसा समझ में आया कि जब तक मैं विश्राम करता हूं मालूम होता है जितना दूर भागकर के दिन भर में मैं दूर निकलता हूं उतनी देर में छाया फिर वापस आ जाती है, सुबह फिर मेरे पीछे हो जाती है। तब उसने रात भी रूकना बन्द कर दिया। फिर वह पूरा पागल हो गया। फिर वह खाता भी नहीं, पीता भी नहीं। भागते हुए लाखों की भीड़ उसको देखती, फूल फेंकती। कोई राह चलते उसके हाथ में रोटी पकड़ा देता, कोई पानी पकड़ा देता। उसकी पूजा बढ़ती चली गयी। लाखों लोग उसका आदर करने लगे लेकिन वह आदमी पागल होता चला गया और अंततः वह आदमी एक दिन गिरा और मर गया। गांव के लोगों ने, जिस गांव में वह मरा था उसकी कब्र बना दी। एक वृक्ष के नीचे छाया में, और उस गांव के एक बूढ़े फकीर से उन्होंने पूछा कि हम इसकी कब्र पर क्या लिखें तो उस फकीर ने एक लाइन उसकी कब्र पर लिख दी। किसी गांव में, किसी जगह वह कब्र अब भी है। हो सकता है कभी आपका उस जगह से निकलना हो तो पढ़ लेना। उस कब्र पर उस फकीर ने लिख दिया है कि यहां एक ऐसा आदमी सोता है जो जिन्दगी भर अपनी छाया से भागता रहा है जिसने जिन्दगी छाया से भागने में गंवा दी। और उस आदमी को इतना भी पता नहीं था जितनी उसकी कब्र को पता था क्योंकि कब्र छाया में है और भागती नहीं इसलिए कब्र की कोई छाया ही नहीं बनती है। इसके भीतर जो सोया है उसे इतना भी पता नहीं है जितना उसकी कब्र को पता है। हम भी भागते हैं। हमें आश्चर्य होगा कि कोई आदमी छाया से भागता है। हम सब भी छायाओं से ही भागते हैं और जिससे हम भागते हैं वही हमारे पीछे पड़ जाता है और जितना तेजी के हम भागते हैं उसकी दौड़ भी उतनी ही तेज हो जाती है क्योंकि वह हमारी ही छाया है।

मृत्यु हमारी ही छाया है और अगर हम उससे भागते रहें तो हम उसके सामने कभी खड़े होकर पहचान न पायेंगे कि वह क्या है। काश, वह आदमी रुक जाता और पीछे लौटकर देख लेता तो शायद अपने पर हंसता और कहता, कैसा पागल हूं छाया से भागता हूं। अब छाया से कोई भागे तो कभी भी भाग नहीं सकता और छाया से कोई लड़े तो जीत नहीं सकता। इसका मतलब यह नहीं है कि छाया बहुत ताकतवर है और उससे हम जीत नहीं सकते। इसका केवल इतना ही मतलब है कि छाया है ही नहीं, उससे जीतने की कोई बात ही नहीं उठती। जो नहीं है उससे जीता नहीं जा सकता इसीलिए लोग मृत्यु से हारते चले जाते हैं क्योंकि मृत्यु केवल जीवन की छाया है। जब जीवन चलता है तो छाया चलती है उसके पीछे। वह जीवन के पीछे बनने वाली शैडो है और हम कभी लौटकर देखना नहीं चाहते कि वह क्या है। तो हम कई बार दौड़ दौड़ के थक थक के गिर चुके हैं बहुत बार। इस तट पर आप पहली ही बार आये होंगे, ऐसा नहीं, और बहुत बार भी आ चुके होंगे। यह तट नहीं रहा होगा, कोई और तट रहा होगा। यह शरीर न रहा होगा कोई और शरीर रहा होगा लेकिन दौड़ यही रही होगी। पैर यही रहे होंगे, भाग यही रही होगी।

मृत्यु से डरते हुए हम अनेक जीवन जी लेते हैं और फिर भी पहचान नहीं पाते और देख नहीं पाते। हम इतने भयभीत और डरे हुए लोग हैं कि जब मौत सामने आती है, जब वह पूरी छाया हमें घेरती है तब हम डर के कारण बेहोश हो जाते हैं। कोई भी आदमी साधारणतः मरते क्षण होश में नहीं रहता। अगर होश में एक बार भी रह जाय तो फिर मृत्यु का भय उसके लिए सदा के लिए विलीन हो जाय। अगर वह एक दफा देख ले कि मरना यानी क्या, मरने में होता क्या है तो फिर दोबारा उसे मृत्यु का भय न रहे क्योंकि मृत्यु ही न रहे और ऐसा नहीं है कि वह मृत्यु पर विजय पा ले। विजय तो उस पर पाते हैं जो हो। सिर्फ जानने से ही मृत्यु मिट जाती है। विजय पाने को कुछ शेष नहीं रहता। लेकिन हम भी बहुत बार मरे लेकिन जब भी मरे हैं, बेहोश हो गये हैं। जैसा कि डाक्टर या सर्जन

आपरेशन करता है तो आपरेशन के पहले बेहोशी की दवा दे देता है ताकि आपको पता न चले कि तकलीफ हो रही है। मरने से हम इतने डरे हुए लोग हैं कि मरते वक्त हम स्वेच्छा से ही बेहोश हो जाते हैं। मरने के थोड़े देर पहले ही बेहोश हो जाते हैं, बेहोशी में ही मरते हैं, फिर बेहोशी में ही नया जन्म हो जाता है। न हम मृत्यु को देख पाते हैं न हम जन्म को देख पाते हैं और इसलिए कभी भी नहीं समझ पाते हैं कि जीवन शाश्वत है। मृत्यु और जन्म बीच में आये हुए पड़ाव से ज्यादा नहीं हैं जहां हम वस्त्र बदल लेते हैं या घोड़े बदल लेते हैं। पुराने जमाने में रेलगाड़ियां नहीं थीं लोग घोड़े गाड़ियों से यात्रा करते थे। एक गांव से दूसरे गांव जाते थे, वहां घोड़े बदल लेते थे क्योंकि घोड़े थक जाते थे। घोड़े बदल कर वापस कर देते, दूसरे सराय से घोड़े ले लेते, फिर आगे भी गांव में घोड़े ले लेते थे। लेकिन उन घोड़े बदलने वालों को ऐसा नहीं लगता था कि हम मर गये, हमारा फिर जन्म हुआ क्योंकि वे होश में बदलते थे। लेकिन कभी कभी ऐसा भी होता था कि कोई घोड़े वाला शराब पीकर यात्रा करता था। तो घोड़ा तो बदल जाते थे। जसे ही घोड़ा बदलता और गौर से देखता तो कहता था, यह सब बदल गया, यह सब दूसरा हो गया।

मैंने सुना है, कभी कोई शराब पीने वाले घुड़-सवार ने यह कहा था कि कहीं मैं भी तो नहीं बदल गया क्योंकि वह घोड़ा ही नहीं है। तो मैं कहीं दूसरा आदमी तो नहीं हो गया ?

जन्म और मृत्यु वाहन हैं, बदलने के स्थान हैं जहां पुराने वाहन छोड़ दिये जाते हैं थके घोड़े छोड़ दिये जाते हैं और ताजे घोड़े ले लिए जाते हैं लेकिन ये दोनों कृत्य हमारी बेहोशी में हो जाते हैं और जिसका जन्म और मृत्यु बेहोशी में है उसका जीवन भी होश में नहीं हो सकता है। उसका जीवन भी करीब करीब अर्द्ध बेहोशी में अर्द्ध मूर्छित में रह जाता है। मैं यह कहना चाहता हूं कि मृत्यु को देखना जरूरी है, जानना जरूरी है। उसे पहचानना जरूरी है लेकिन यह तो जब मरेंगे तब हो सकता है। मैं जब मरूंगा तब देख सकूंगा। फिर अभी क्या उपाय है और जब कोई मरेगा तब अगर देख सकेगा तो फिर समझने का उपाय ही नहीं है क्योंकि वह बेहोश ही हो जायगा मरते वक्त। हां, अभी एक उपाय है, अभी हम स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश का प्रयोग कर सकते हैं और मैं आपसे कहना चाहता हूं ध्यान या समाधि और कुछ भी नहीं है। ध्यान और समाधि स्वेच्छा से मृत्यु के अनुभव में प्रवेश है। जो शरीर के छूटने पर एकदम अपने आप घटित होगी घटना वह हम अभी भी अपनी स्वेच्छा से शरीर में भीतर छोड़कर हट जा सकते हैं और जान सकते हैं कि मृत्यु हो गयी, मृत्यु गुजर गयी। हम मृत्यु का आज भी, इस रात भी साक्षात्कार कर सकते हैं, क्योंकि मृत्यु की घटना का कुल इतना मतलब है कि हमारा शरीर और हमारी आत्मा उस यात्रा पर भेद को अनुभव कर ले जहां बैलगाड़ी छूट जाती है और यात्री आगे निकल जाता है।

मैंने सुना है, शेख फरीद के पास कभी एक आदमी गया और उस आदमी ने पूछा कि सुनते हैं हम कि मंसूर के हाथ काटे गये, पैर काटे गये तो मंसूर को कोई तकलीफ न हुई, लेकिन विश्वास नहीं आता। पैर में कांटा गड़ जाता है तो तकलीफ होती है, हाथ पैर काटने से तकलीफ नहीं हुई होगी ? यह सब कपोल कल्पित कहानियां मालूम होती हैं। और उस आदमी ने कहा कि यह भी हम सुनते हैं कि जब जीसस को शूली पर लटकाया गया तो वे जरा भी दुखी नहीं हुए और जब उनसे कहा गया कि अंतिम कुछ प्रार्थना करनी हो तो कर सकते हो। तो शूली पर लटके हुए, कांटों से छिदे हुए, हाथों में खीलों से विधे हुए लहू बहते हुए उस अंतिम क्षण में जीसस ने जो कहा वह विश्वास के योग्य नहीं है, उस आदमी ने कहा। जीसस ने यह कहा कि क्षमा कर देना इन लोगों को, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। यह वाक्य आपने भी सुना होगा और सारी दुनिया में जीसस को मानने वाले लोग निरंतर इसको दोहराते हैं। यह वाक्य बड़ा सरल है।

जीसस ने कहा, इन लोगों को क्षमा कर देना परमात्मा, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। आमतौर पर इस वाक्य को पढ़ने वाले ऐसा समझते हैं कि जीसस ने यह कहा है कि ये बिचारे नहीं जानते कि मुझ अच्छे आदमी को मार रहे हैं। नहीं, जीसस का यह मतलब नहीं था। जीसस का मतलब यह था कि इन पागलों को यह पता नहीं है कि जिसको वे मार रहे हैं वह मर ही नहीं सकता है। इनको माफ कर देना, इनको पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं। ये एक ऐसा काम कर रहे हैं जो असंभव हैं। ये मारने का काम कर रहे हैं जो असभव है। उस आदमी ने कहा, विश्वास नहीं हो सकता कि मारा जाता हुआ आदमी इतनी करुणा कर सकता हो। उस वक्त तो वह क्रोध से भर जायेगा। फरीद खुद हंसने लगा और उसने कहा, तुमने खूब अच्छा सवाल उठाया। लेकिन उस सवाल का जवाब मैं बाद में दूंगा। एक छोटा सा मेरा काम कर लाओ। पास मैं पड़ा हुआ एक नारियल उठाकर दे दिया उस आदमी को और कहा कि इसे फोड़ डालो। लेकिन ध्यान रहे, इसकी गिरी को पूरी तरह बचा लेना, गिरी टूट न जाय। लेकिन वह नारियल था कच्चा। उस आदमी ने कहा, माफ करियेगा, यह काम मुझसे न हो सकेगा। नारियल बिल्कुल कच्चा है और अगर मैंने इसकी खोल तोड़ी तो गिरी भी टूट जायेगी। तो उस फकीर ने कहा, उसे रख दो। दूसरा नारियल उसको दिया जो कि सूखा था और कहा कि इसे तोड़ लाओ। इसकी गिरी तो तुम बचा सकोगे ? उस आदमी ने कहा, इसकी गिरी बच सकती है। उस फकीर ने कहा, मैंने तुम्हें जवाब दिया, कुछ समझ में आया ? उस आदमी ने कहा, मेरी समझ में नहीं आया। नारियल का और मेरे सवाल का क्या संबंध है। उस फकीर ने कहा, इस नारियल को भी रख दो, कुछ फोड़ना फाड़ना नहीं। मैं तो तुमसे कह रहा हूं कि एक सूखा नारियल है जिसकी गिरी और खोल अभी आपस में जुड़ी हुई है। अगर तुम उसके खोल को चोट पहुंचाओगे तो उसकी गिरी भी टूट जायेगी। फिर एक सूखा नारियल और कच्चा नारियल में फर्क ही क्या है, छोटा सा फर्क है कि उसकी गिरी सिकुड़ गयी है भीतर और खोल से अलग हो गयी है। गिरी और खोल के बीच में एक फासला हो गया है। अब तुम कहते हो कि इसकी खोल तोड़ देंगे तो गिरी बच सकती है। तो मैंने तुम्हारे सवाल का जवाब दे दिया। उस आदमी ने कहा, मैं फिर भी नहीं समझा। तो उस आदमी ने कहा, जाओ, मरो और समझो। इसके बिना तुम समझ नहीं सकते। लेकिन तब भी तुम समझ नहीं पाओगे क्योंकि तब तुम बेहोश हो जाओगे। खोल और गिरी एक दिन अलग होंगे लेकिन तब तुम बेहोश हो जाओगे और अगर समझना है तो अभी खोल और गिरी को अलग करना सीखो जिन्दा में। और अगर अभी खोल और गिरी अलग हो जायें तो मौत खत्म हो गयी। वह फासला पैदा होते से हम जानते हैं कि खोल अलग, गिरी अलग और खोल टूट जायेगी तो भी मैं बचूंगा, तो भी मेरे टूटने का कोई सवाल नहीं है। मृत्यु घटित होगी तो भी मेरे भीतर प्रवेश नहीं कर सकती है, मेरे बाहर ही घटित होगी यानी वही मरेगा जो मैं नहीं हूं। जो मैं हूं वह बच जायगा।

ध्यान या समाधि का यही अर्थ है कि हम अपनी खोल और गिरी को अलग करना सीख जायें। वे अलग हो सकते हैं क्योंकि वे अलग हैं। वे अलग अलग जाने जा सकते हैं क्योंकि वे अलग हैं। इसलिए ध्यान को कहता हूं कि स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश। अपनी ही इच्छा से मौत में प्रवेश। जो आदमी अपनी इच्छा से मौत में प्रवेश कर लेता है वह मौत का साक्षात्कार कर लेता है कि यह रही मौत और मैं अभी भी हूं।

सुकरात मर रहा है, आखिरी क्षण है। जहर पीसा जा रहा है उसे मारने के लिए। वह बार बार पूछता है बड़ी देर हो गयी, जहर कब तक पिसेगा। उसके मित्र रो रहे हैं और कह रहे हैं कि आप पागल हो गये हैं, हम तो चाहते हैं कि थोड़ी देर और जी लो तो हमने जहर पीसने वाले को रिश्वत दी हुई है, समझाया बुझाया है कि थोड़ी धीरे धीरे पीसना। सुकरात बाहर पहुंच जाता है और जहर पीसने वाले से

पूछता है कि बड़ी देर लगा रहे हो, बड़े अकुशल मालूम होते हो, नये नये पीस रहे हो ? पहले किसी फांसी की सजा दिये हुए आदमी को तुमने जहर नहीं दिया है ? वह आदमी कहता है, जिन्दगी भर से दे रहा हूं लेकिन तुम जैसा पागल आदमी मैंने नहीं देखा। तुम्हें इतनी जल्दी क्या पड़ी है, और थोड़ी देर सांस ले लो, और थोड़ी देर जी लो, और थोड़ी देर जिन्दगी में रह लो मैं धीरे धीरे पीस रहा हूं। तुम खुद ही पागल की तरह बार बार पूछ रहे हो कि बड़ी देर हो जायगी। इतनी जल्दी क्या है मरने की ? सुकरात कहता है बड़ी जल्दी है क्योंकि मैं मौत को देखना चाहता हूं। मैं देखना चाहता हूं कि मौत क्या है और मैं यह भी देखना चाहता हूं कि मौत भी हो जाय और फिर मैं भी बचता हूं या नहीं बचता हूं। अगर नहीं बचता हूं तो सारी बात ही समाप्त हो जाती है और अगर बचता हूं तो मौत समाप्त हो जाती है। असल में मैं यह देखना चाहता हूं कि मौत की घटना में कौन मरेगा ? मौत मरेगी कि मैं मरूंगा। मैं बचूंगा या मौत बचेगी यह मैं देखना चाहता हूं। क्योंकि बिना जाये कैसे देखूं। फिर सुकरात को जहर दे दिया गया। सारे मित्र छाती पीटकर रो रहे हैं और होश में नहीं हैं और सुकरात क्या कर रहा है। सुकरात उनसे कह रहा है कि मेरे पैर मर गये लेकिन अभी मैं जिन्दा हूं। सुकरात कहता है, मेरे घुटने तक जहर चढ़ गया है, मेरे घुटने तक के पैर बिल्कुल मर चुके हैं। अब अगर तुम इन्हें काटो तो भी मुझे पता नहीं चलेगा मित्रो, मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे पैर तो मर गये लेकिन मैं जिन्दा हूं। यानी एक बात पक्की हो गयी कि मैं पैर नहीं था। मैं अभी हूं मैं पूरा का पूरा हूं। मेरे भीतर अभी कुछ भी कम नहीं हो गया है। फिर सुकरात कहता है कि अब मेरे पूरे पैर जा चुके, जांघ तक सब समाप्त हो चुका है। अगर तुम मेरी जांघों तक काट डालो मुझे कुछ भी पता नहीं चलेगा और वह मित्र हैं कि रोये चले जा रहे हैं। सुकरात कह रहा है कि रोओ मत, एक मौका तुम्हें मिला है, देखो। एक आदमी मर रहा है और तुम्हें खबर दे रहा है कि फिर भी वह जिन्दा है। मेरे पैर तक पूरे काट डालो तो भी मैं नहीं मरा हूं, मैं अभी हूं। और फिर वह कहता है कि मेरे हाथ ढीले पड़े जा रहे हैं, हाथ भी मर जायेंगे। आह, मैं कितनी बार अपने हाथों को स्वयं समझा था, वे हाथ भी चले जा रहे हैं लेकिन मैं हूं और वह सुकरात मरता हुआ कहता चला जाता है, वह कहता है, धीरे धीरे सब शांत हुआ जा रहा है, सब डूबे जा रहा है लेकिन मैं उतना का ही उतना हूं। सुकरात कहता है, हो सकता है कि थोड़ी देर बाद मैं तुमको खबर देने को न रह जाऊं लेकिन तुम यह मत समझ लेना कि मैं मिट गया क्योंकि जब इतना शरीर मिट गया और मैं नहीं मिटा तब थोड़ा शरीर और मिट जायेगा तब भी मैं नहीं मिटूंगा। हो सकता है तुम्हें खबर न दे सकूं क्योंकि खबर शरीर के द्वारा ही दी जा सकती है लेकिन मैं रहूंगा और वह आखिरी क्षण कहता है कि शायद आखिरी बात तुमसे कह रहा हूं। जीभ मेरी लड़खड़ा गयी है और अब इसके आगे मैं एक शब्द नहीं बोल सकूंगा, लेकिन मैं अभी भी कह रहा हूं, मैं हूं। वह आखिरी वक्त यह कहता हुआ मर गया है कि मैं हूं।

ध्यान में धीरे धीरे ऐसे ही भीतर प्रवेश करना पड़ता है और धीरे धीरे एक एक चीज छूटती चली जाती है एक एक चीज से फासला पैदा होता चला जाता है और फिर वह घड़ी आ जाती है कि लगता है, सब दूर पड़ रहा है, जैसे तट पर किसी और की लाश लगी होगी, ऐसा लगेगा और मैं हूं, सिर वह पड़ा है और फिर भी मैं हूं और अलग और भिन्न, बिल्कुल दूसरा। जैसे ही हमें यह अनुभव हो जाता है हमने मृत्यु का साक्षात्कार कर लिया जीते हुए, फिर मृत्यु से हमारा कोई संबंध कभी नहीं होगा। मृत्यु आती रहेगी, लेकिन तब वह पड़ाव होगी, वस्त्र का बदलना होगा, जहां हम नये घोड़े ले लेंगे और नये शरीरों पर सवार हो जायेंगे और नयी यात्रा पर निकलें, नये मार्गों पर, नये आलोकों में। लेकिन मृत्यु हमें मिटा नहीं जायेगी। इस बात का पता साक्षात्कार से ही हो सकता है, एनकाउंटर से ही हो सकता है। हमें जानना ही पड़ेगा, हमें गुजरना ही पड़ेगा

और मरने से हम इतने डरते हैं इसीलिए हम ध्यान भी नहीं कर पाते। मेरे पास कितने लोग आते हैं और कहते मैं ध्यान नहीं कर पाता हूं। मैं उनसे क्या कहूं। उनकी असली तकलीफ और है और ध्यान मरने की एक प्रक्रिया है। ध्यान में हम वहीं पहुंच जाते हैं जहाँ मरा हुआ आदमी पहुंचता है। फर्क सिर्फ एक होता है कि मरा हुआ आदमी बेहोश पहुंचता है, हम होश में पहुंच जाते हैं, बस इतना ही फर्क होता है। मरे हुए आदमी को पता नहीं होता कि क्या हो गया, खोल कैसे टूट गयी और गिरी कैसे बच गयी और हमें पता होता है कि गिरी अलग हो गयी है, खोल अलग हो गयी है। तो जो लोग ध्यान में नहीं जा पाते हैं उनके न जा पाने का बुनियादी कारण मृत्यु का भय है और कोई भी कारण नहीं। और जो व्यक्ति भी मृत्यु से डरे हुए हैं वे कभी भी समाधि में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। समाधि अपने हाथ से मृत्यु को आमंत्रण है कि आओ, मैं मरने को तैयार हूं, मैं जानना चाहता हूं कि मौत हो जायेगी, मैं न बचूंगा। और अच्छा है कि मैं होश पूर्वक जान लूं क्योंकि बेहोश में यह घटना घटेगी तो मैं कुछ भी नहीं जान पाऊंगा। इसलिए, पहली बात, आज की रात आपसे यह कहता हूं कि मृत्यु से जब तक आप भागेंगे तब तक आप मृत्यु से हारते रहेंगे और जिस दिन खड़े होकर मृत्यु के आमने सामने हो जायेंगे उसी दिन मौत विदा हो जायेगी, आप शेष रह जायेंगे।

इधर इन तीन दिनों में मृत्यु के आमने सामने आप कैसे खड़े हो सकते हैं उसकी ही प्रक्रिया पर मैं सारी बात करूंगा। इन तीन दिनों में ऐसा करूंगा कि बहुत से लोग मरना जान लेंगे मर सकेंगे और अगर यहां मर सकें—इस तट पर और यह तट बहुत अद्भुत है, इस तट पर उस आदमी के पैर पड़े जिसने किसी युद्ध में यह कहा था—अर्जुन को कहा था कृष्ण ने कि तू फिक्र मत कर और डर मत। तू मरने मारने से मत डर क्योंकि मैं तुमसे कहता हूं कि न कोई मरता है न कोई मारता है, न कोई कभी मरा है, न कभी कोई मर सकता है और जो मरता है और जो मर सकता है वह मरा ही हुआ है और जो नहीं मरता है और नहीं मर सकता है उसके मरने का कोई उपाय नहीं है, वही जीवन है। इस तट पर उस कृष्ण के पैर पड़े हैं, इसपर हम अचानक इकट्ठे हो गये हैं। इस रेत ने उस कृष्ण को आते और जाते देखा। लोगों ने समझा होगा कृष्ण मर ही गये। हम सब, जो मरने को ही सत्य जानते हैं उनके लिए सब मर जाते हैं। इस सागर ने, इस रेत ने नहीं जाना कि वह मर गये। इस आकाश ने, इस चांद तारों ने नहीं जाना कि वे मर गये। जीवन में कहीं भी मृत्यु की कोई लहर ही नहीं है, लेकिन हम सब ने यही जाना कि वे मर गये और हम सबने, इसीलिए ऐसा जान लेते हैं क्योंकि हमको अपने ही मरने का ख्याल सवार है और हमें अपने मरने का इतना ख्याल क्यों सवार है? हम अभी तो जी रहे हैं, हम मरने से इतने भयभीत क्यों हैं? हम मरने से इतने डरे हुए क्यों हैं? असल में इसके पीछे एक राज है, उसे समझ लेना चाहिए।

एक गणित है और वह गणित बड़े मजे का है। हमने अपने को तो मरते कभी नहीं देखा है लेकिन हम दूसरे को मरते देखते हैं और दूसरे को मरते देखकर हमको यह धीरे धीरे धारणा मजबूत हो जाती है कि मुझे भी मरना पड़ेगा। अब एक बूंद है, और हजार बूंदों के बीच में पड़ी है। सूरज की किरण आयी और उस एक बूंद पर जोर से पड़ी और वह बूंद भाप बन कर उड़ गयी। आस पास की बूंदों ने समझा कि वह मर गयी, वह खत्म हो गयी और ठीक ही सोचा उन बूंदों ने क्योंकि उन्हें दिखायी पड़ा कि अब तक थी, अब नहीं है। लेकिन वह बूंद अब भी बादलों में है। यह वे बूंदें कैसे जानें जो खुद भी बादल न हो जायें, या बूंद अब सागर में जाकर फिर बूंद बन गयी होगी, यह वे बूंदें कैसे जानें जब तक कि वे खुद उस यात्रा पर न निकल जायें।

हम सब आसपास जब किसी को मरते देखते हैं तो समझते हैं, गया एक आदमी, मरा। हमें पता नहीं कि वह वाष्पीभूत हुआ। वह फिर सूक्ष्म में गया

और फिर नयी यात्रा पर निकल गया। वह बूंद भाप बनी और फिर बूंद बनने के लिए भाप बन गयी, यह हमें कैसे दिखायी पड़ेगा ? हम सबको लगता है कि एक व्यक्ति और खो गया, एक व्यक्ति और मर गया और ऐसे रोज कोई मरता चला जाता है और रोज कोई बूंद खोती चली जाती है धीरे धीरे हमें भी पक्का हो जाता है कि मुझे भी मर जाना पड़ेगा। मैं भी मर जाऊँगा और तब एक भय पकड़ लेता है कि मैं मर जाऊंगा। दूसरे को देखकर यह भय पकड़ लेता है। दूसरे को ही देखकर हम जीते हैं इसलिए हमारी बड़ी कठिनाई है। कल रात ही मैं कुछ मित्रों से कह रहा था :

एक यहूदी फकीर हुआ। वह फकीर अपने दुखों से बहुत परेशान हो गया है, कौन परेशान नहीं हो जाता है ? हम सब अपने दुखों से परेशान हैं। हमारे दुख में सबसे बड़ी परेशानी दूसरे के सुख हैं। दूसरे सुखी दिखायी पड़ते हैं और हम दुखी होते चले जाते हैं और इसमें बड़ी गणित है, वही गणित, जिसकी मैंने आपसे मौत के संबंध में बात की है। हमें अपना दुख दिखायी पड़ता है और दूसरे के चेहरे दिखायी पड़ते हैं, उनके भीतर का दुख तो दिखायी पड़ता नहीं, उनकी आंखों की, उनके होठों की मुस्कुराहटें दिखायी पड़ता हैं। हम भी भीतर दुखी होते हैं तब भी हम बाहर मुस्कुराये चले जाते हैं। असल में दुख को छिपाने की मुस्कुराहट एक तरकीब है। कोई अपने को दुखी नहीं देखना चाहता है। अगर सुखी न हो सके तो भी कम से कम सुखी हो गया है ऐसा तो दिखाना ही चाहता है क्योंकि अपने को दुखी दिखाना बड़ी दीनता और हार की और पराजय की बात है। इसलिए हम बाहर एक मुस्कुराता हुआ चेहरा बना लेते हैं—नाटक, अभिनय, और भीतर हम जुड़े हुए होते हैं, भीतर ऐसे इकट्ठे होते चले जाते हैं, बाहर मुस्कुराहट का अभ्यास कर लेते हैं। तो जब बाहर से हमें कोई देखता है तो हमारी मुस्कुराहट दिखायी पड़ती है और अपने भीतर देखता है तो दुख दिखायी पड़ता है, तब वह मुश्किल में पड़ जाता है। वह सोचता है, सारी दुनिया सुखी है, एक मैं ही दुखी हूं। उस फकीर को भी ऐसा ही हुआ। उसने एक दिन रात परमात्मा को कहा कि मैं तुमसे यह नहीं कहता कि मुझे दुख न दे क्योंकि अगर मैं दुख देने योग्य हूं तो मुझे दुख मिलेगा ही, लेकिन इतनी प्रार्थना तो कर सकता हूं कि इतना ज्यादा मत दे। दुनिया में सब लोग हंसते दिखायी पड़ते हैं लेकिन मैं भर एक रोता हुआ आदमी हूं, सब खुश नजर आते हैं, एक मैं दुखी हूं, सब खुशहाल दिखायी पड़ रहे हैं, एक मैं ही उदास अंधेरे में खो गया हूं। आखिर मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ? एक कृपा कर, मुझे किसी दूसरे आदमी का दुख दे दे और मेरा दुख उसे दे दे, बदल दे किसी से भी तो भी मैं राजी हो जाऊंगा। रात वह सोया और एक सपना देखा, एक बहुत बड़ा भवन है और उस भवन में लाखों खूंटियां लगी हैं और लाखों लोग चले आ रहे हैं और प्रत्येक आदमी अपनी अपनी पीठ पर दुखों की एक गठरी बांधे हुए है। दुखों की गठरी देखकर वह बहुत डर गया क्योंकि उसे बड़ी हैरानी मालूम पड़ी। वह भी अपनी गठरी टांगे हुए है। सबके दुखों की गठरियों का जो आकार है वह बिल्कुल बराबर है। मगर वह बड़ा हैरान हुआ। यह पड़ौसी तो उसका रोज मुस्कुराता दीखता था और सुबह जब उससे पूछता था, कहो कैसा हाल है तो वह कह देता था, बड़ा आनन्द है, ओके, ठीक है। और यह आदमी भी इतने दुखों का बोझ लिए चले आ रहा है। उसमें नेता भी उतने ही बोझ लिए हैं, अनुयायी भी उतने बोझ लिए हुए हैं, गुरू भी उतना ही बोझ लिए हुए है, शिष्य भी उतना ही बोझ लिए हुए है। सभी उतना बोझ लिए चले आ रहे हैं—ज्ञानी और अज्ञानी। अमीर और गरीब, बीमार और स्वस्थ, सबके बोझ की गठरी बराबर है। वह बहुत हैरान हो गया। आज पहली दफा गठरी दिखायी पड़ी, अब तक तो चेहरे दिखायी पड़ते थे, फिर उस भवन में एक जोर की आवाज गूंजी कि सब लोग अपने अपने दुखों को खूंटियों पर टांग दें। इसने भी अपने दुख को खूंटी पर टांग दिया। सारे लोगों ने जल्दी की है अपना दुख टांगने की। कोई एक क्षण भी अपने दुख को अपने ऊपर नहीं रखना चाहता। टांगने का मौका मिले

तो हम जल्दी से टांग ही दगे। और तभी एक दूसरी आवाज गूंजी कि अब जिसको जिसकी गठरी चुननी हो वह चुन ले। तो हम सोचेंगे कि उस फकीर ने जल्दी से किसी और की गठरी चुन ली होगी ? नहीं, ऐसी भूल उसने नहीं की। वह भागा घबरा कर अपनी गठरी उठाने के लिए कि कहीं और कोई पहले न उठा ले अन्यथा मुश्किल में पड़ जाऊँगा, क्योंकि गठरियां सब बराबर थीं। अब उसने सोचा कि अपनी गठरी है, ठीक है। कमसे कम परिचित दुख तो है उसके भीतर। दूसरे की गठरी के भीतर पता नहीं कौन से अपरिचित दुख हैं। परिचित दुख फिर भी कम दुख हैं– जाना, माना, पहचाना। घबराहट में दौड़कर अपनी गठरी उठा ली कि कोई और दूसरा उसकी न उठा ले। लेकिन जब उसने घबराहट में उठाकर चारों तरफ देखा तो उसने देखा कि सारे लोगों ने दौड़कर अपनी ही उठा ली है, किसी ने किसी की नहीं उठायी। उसने पूछा कि इतनी जल्दी क्यों कर रहे हो उठाने की ? तो उन्होंने कहा कि हम डर गये। अब तक हम यही सोचते थे कि सारे लोग सुखी हैं, हमीं दुखी हैं। उसने जिससे पूछा, उस भवन में, उन्होंने यही कहा कि मैं यही सोचता था कि सारे लोग सुखी हैं। हम तो तुम्हें भी सुखी समझते थे, तुम भी तो रास्ते पर मुस्कुराये हुए निकलते थे। हमने कभी सोचा नहीं था कि हमारे भीतर भी इतनी गठरियों के दुख हैं। उस फकीर ने पूछा आपने अपनी क्यों उठा ली, बदल क्यों नहीं ली, उन्होंने कहा, हम सबने प्रार्थना की थी भगवान से आज रात कि हम अपनी गठरियां बदलना चाहते हैं दुखों की। मगर हम डर गये। हमें ख्याल भी न था कि हम सब के दुख बराबर हो सकते हैं। फिर हमने सोचा कि अपना ही उठा लेना अच्छा है। पहचान का है, परिचित है और नये दुखों में कौन पड़े। पुराने दुखों के धीरे धीरे आदी लोग हो जाते हैं। उस रात किसी ने भी किसी की गठरी न चुनी। फकीर की नींद टूट गयी, उसने भगवान को धन्यवाद दिया कि तेरी बड़ी कृपा है कि मेरा ही दुख मुझे वापस मिल गया, अब मैं कभी ऐसी प्रार्थना नहीं करूंगा।

असल में एक गणित है, दूसरे के चेहरे हमें दिखायी पड़ते हैं और अपनी असलियत दिखायी पड़ती है और तब बड़ी भूल हो जाती है। जिन्दगी और मृत्यु के संबंध में भी वही भूल का गणित काम कर रहा है, दूसरे मरते दिखायी पड़ते हैं। अपने को तो मरते कभी नहीं जाना। दूसरे को तो मृत्यु दिखायी देती है और भीतर उनके कुछ बचता है या नहीं, हमें कुछ पता नहीं चलता। और जब हम मरते हैं तब हम बेहोश हो जाते हैं। इसलिए मृत्यु अपरिचित रह जाती है इसलिए जरूरी है कि हम अपनी स्वेच्छा से मृत्यु में उतरें और एक बार जो मृत्यु के दर्शन कर लेता है वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है, मृत्यु का विजेता हो जाता है। विजेता कहना बेकार है क्योंकि कुछ बचता ही नहीं है जीतने को, मृत्यु असत्य हो जाती है, मृत्यु रहती ही नहीं। जैसे कोई आदमी दो+दो जोड़कर पांच लिख दे और फिर कल उसको समझ में आ जाए कि दो और दो चार है तो वह क्या कहेगा ? यह कि मैंने पांच को जीत कर चार बना दिया है ? वह कहेगा, जीत का सवाल ही नहीं था, पांच थे ही नहीं, गलत था मेरा हिसाब। हिसाब तो चार ही था, मैं पांच समझ रहा था वह मेरी भूल थी, भूल दिख गयी, बात खत्म हो गयी। फिर क्या वह आदमी यह कहेगा कि मैं पांच से कैसे छुटकारा पाऊं क्योंकि अब दो और दो चार हो रहे हैं लेकिन पांच मैंने जोड़े थे, अब मैं कैसे उससे मुक्त होऊं। वह आदमी पूछने नहीं आयेगा मुक्ति के लिए क्योंकि जिसे यह दिख गया है दो और दो चार हैं, बात खत्म हो गयी, पांच रहे ही नहीं। मुक्त किससे होना है ? मृत्यु से न तो मुक्त होना है और न मृत्यु को जीतना है। मृत्यु को जानना है। जानना ही मुक्ति बन जाती है, जानना ही जीत बन जाती है इसलिए मैंने पहले कहा कि ज्ञान शक्ति है, ज्ञान मुक्ति है, ज्ञान विजय है। मृत्यु का ज्ञान मृत्यु को विलीन कर देता है तब अनायास ही हम पहली बार जीवन से संबधित हो पाते हैं। **इसलिए ध्यान के संबंध में मैंने एक बात यह कही कि स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश है और दूसरी बात यह कहना चाहता हूं जो स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश करता है, अनायास ही जीवन में प्रविष्ट**

हो जाता है। वह जाता तो है मृत्यु को खोजने लेकिन मृत्यु को नहीं पाता है, वहां परम जीवन को पा लेता है। वह जाता तो है मृत्यु के भवन में खोज करने लेकिन पहुंच जाता है जीवन के मंदिर में। और जो मृत्यु के भवन से भागता है वह जीवन के मंदिर में नहीं पहुंच पाता है। क्या मैं आपसे कहूं, कि जीवन का जो मंदिर है उसकी दीवाल पर मृत्यु की छायाओं के चित्र खुदे हैं ? क्या मैं आपसे कहूं, जीवन का जो मंदिर है उसकी दीवाल पर मौत के नकशे बने है और हम मौत से भागने की वजह से जीवन के मंदिर से भी भागते रहते हैं, क्योंकि हम जब मौत को राजी हो जायें तो हम दीवालों के लिए राजी हैं। भीतर प्रवेश करें तो हम जीवन के मंदिर में पहुंच पायें। जीवन का तो देवता है और मृत्यु की दीवालें हैं। जीवन का तो मंदिर है और मृत्यु के द्वार पर दरवाजों पर सब तरफ चित्र खुदे हैं, हम उन्हीं को देखते भागते रहे हैं। अगर आप कभी खजुराहो गये हैं तो एक अद्‌भुत बात दिखायी पड़ेगी कि खजुराहो के मंदिरों में चारों तरफ मंदिर के सेक्स की मैथुन की प्रतिमाएं खुदी हैं। नग्न और अश्लील दिखायी पड़ती हैं। अगर कोई आदमी उनको देखकर ही भाग जाय तो भीतर के मंदिर तक परमात्मा तक नहीं पहुंच पायेगा। भीतर परमात्मा की प्रतिमा है और बाहर काम की, वासना की मैथुन की सारी प्रतिमाएं खुदी हैं। बड़े अद्‌भुत लोग थे जिन्होंने खजुराहो के मंदिर बनाये होंगे। उन्होंने जीवन की एक गहरी बात खोद दी। उन्होंने कहा, बाहर दीवाल पर तो सेक्स है और अगर दीवाल से ही भाग गये तो ब्रह्मचर्य भीतर है और अगर दीवालों के भीतर प्रवेशकर गये तो ब्रह्मचर्य को भी उपलब्ध हो जाओगे और बाहर की दीवालों पर तो संसार है और अगर संसार से भी भागते रहे तो परमात्मा तक कभी न पहुंच पाओगे क्योंकि संसार की दीवालों के भीतर जो बैठा है वह परमात्मा है। ठीक वही मैं आपसे कहता हूं, कहीं न कहीं गांव में एक मंदिर बनाना चाहिए जिसकी दीवालों पर तो मौत हो और भीतर जीवन का देवता बैठा हो। ऐसा ही सत्य है। लेकिन हम मौत से भागते हैं तो जीवन के देवता से भी वंचित रह जाते हैं। तो ये दोनों बातें एक साथ कहता हूं। स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश ध्यान है और जो स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश करता है वह जीवन को उपलब्ध हो जाता है—यानी जो मृत्यु का साक्षात्कार करने जाता है अंततः पाता है कि मृत्यु तो विलीन हो गयी है और जीवन से आलिंगन हो गया है। बड़ी उल्टी बातें हैं, बड़ा उल्टा मालूम होता है – मृत्यु को खोजने जायें और जीवन मिल जाय। लेकिन उल्टा नहीं है। मैं वस्त्र पहने हुए हूं। अगर मुझे खोजने आयेंगे तो पहले तो मेरे वस्त्र ही मिलेंगे। वस्त्र मैं नहीं हूं और अगर मेरे वस्त्र से ही डर गये और भाग गये तो मेरा कभी भी पता नहीं चल पायेगा लेकिन अगर मेरे वस्त्रों से न डरे और निकट आये, और निकट आये तो मेरे वस्त्रों के भीतर मेरा शरीर..... लेकिन शरीर भी और गहरे अर्थों में वस्त्र है और अगर मेरे शरीर से ही दूर भाग गये तो फिर मेरे शरीर के भीतर जो बैठा है वह न मिल सकेगा और अगर शरीर से भी न डरे और शरीर को वस्त्र मानकर और भीतर यात्रा की तो भीतर वह बैठा हुआ है जिससे मिलने की सबको आकांक्षा है। कैसा मजा है, शरीर की दीवाल है और आत्मा का देवता भीतर विराजमान है। ये उल्टी बातें हैं—दीवाल पदार्थ की और देवता जीवन का। अगर इसे ठीक से समझ लें तो मृत्यु की दीवाल है और जीवन का देवता है, ऐसे ही कई बार चित्रकार चित्र बनाता है। अगर सफेद रंग उभारना हो तो काले रंग की चारों तरफ पृष्ठभूमि दे देता है। काले रंग की पृष्ठ-भूमि में सफेद रेखाएं उभरकर दिखायी पड़ने लगती हैं। अगर कोई काले से डर जाय तो वह सफेद तक पहुंच ही न पाये। लेकिन उसे पता नहीं कि काला सफेद को उभार जाता है। किसी के गुलाब में कांटे लगे हैं और फूल खिले हैं। अगर कोई कांटे से डर जाय तो फूल तक कभी भी नहीं पहुंच पायेगा। भागता रहेगा कांटों से तो फिर फूल से भी वंचित रह जायगा, लेकिन जो कांटों के लिए राजी हो जाय और पहुंच जाय और डर छोड़ दे वह हैरान हो जाता है कि कांटे सिर्फ फूल की रक्षा हैं, सिर्फ उसके बाहर की दीवाल बना रहे हैं, रक्षा की दीवाल। बीच में फूल खिले हैं और कांटे फूल में दुश्मनी नहीं है।

फूल भी कांटे के अंग हैं। एक ही पौधे की रसधार से दोनों का आना हुआ है। जिसे हम जीवन कह रहे हैं वह जीवन और जिसे हम मृत्यु कह रहे हैं वह मृत्यु दोनों एक ही महाजीवन के अंग हैं। मैं श्वास ले रहा हूं। एक श्वांस बाहर आती है, वही फिर थोड़ी देर में भीतर जाती है जो भीतर जाती है वह थोड़ी देर में बाहर हो जाती है। श्वांस का आना जीवन है श्वास का जाना मृत्यु है। लेकिन दोनों एक ही महा जीवन के कदम हैं—दायें और बायें और दोनों साथ साथ चलते रहते हैं। जन्म एक कदम है, मृत्यु दूसरा कदम है लेकिन अगर हम देख पायें, उतर पायें भीतर तो महा जीवन का दर्शन हो जाता है। इधर तीन दिनों में ध्यान का जो प्रयोग हम करने जा रहे हैं वह मृत्यु में प्रवेश का प्रयोग है। उसके बहुत से पहलुओं के संबध में मैं आपसे बातचीत करूंगा। अभी आज रात पहले दिन के प्रयोग में जो हम बैठेंगे उस संबंध में थोड़ी सी बातें समझा दूं।

मेरी दृष्टि आपके ख्याल में आ गयी है कि हमें उस जगह जाना है जहां मरने का कोई उपाय नहीं रह जाता है—भीतर, भीतर और भीतर। और बाहर की वह सारी ऊपर भी छोड़ देनी है जो मृत्यु पर छूट जाती है। मृत्यु में शरीर छूट जाता है, भाव छूट जाते हैं, विचार छूट जाते हैं, मित्रता छूट जाती है, शत्रुता छूट जाती है। बाहर की दुनिया तो सब छूट जाती है, रह जाते हैं सिर्फ अकेला हम, सिर्फ मैं रह जाता हूं, सिर्फ चेतना रह जाती है ऊपर। तो ध्यान में भी हमें सब छोड़कर मर जाना है और सिर्फ इतना ही रह जाय, मैं जानता हुआ द्रष्टा मात्र रह जाऊं भीतर तो मृत्यु घटित हो जायगी और इन तीन दिनों के अन्दर अगर अपने को छोड़ने और मरने की हिम्मत दिखायी तो वह घटना घट जायगी जिसको समाधि कहते हैं। यह ध्यान रहे, समाधि शब्द बड़ा अद्-भुत है। ध्यान की पूर्णता को भी समाधि कहते हैं और कोई आदमी मर जाता है तो उसकी कब्र को भी समाधि कहते हैं। कभी ख्याल किया है? इन दोनों को समाधि कहते हैं। असल में इन दोनों में राज है, रहस्य है, मिला हुआ अर्थ है। असल में जो आदमी समाधि को उपलब्ध होता है उसका शरीर कब्र ही रह जाता है और कुछ नहीं रह जाता है। वह जानता है, भीतर कोई और ही है, बाहर तो सिर्फ अंधेरा है। जैसे कोई आदमी मर जाता है, हम उसको कब्र बना देते हैं और कहते हैं समाधि है लेकिन वह समाधि दूसरे बनायेंगे और इसके पहले कि दूसरे हमारी समाधि बनायें, अगर हम अपनी समाधि बना सकें तो जीवन में वह घटना घट जाती है जिसके लिए हम प्यासे हैं। दूसरे को समाधि बनाने का तो मौका मिलेगा ही लेकिन हो सकता है, हम अपनी समाधि न बना पायें। अगर हम अपनी समाधि बना लें तो फिर सिर्फ शरीर ही मरेगा, मेरे मरने का कोई सवाल ही नहीं। मैं कभी भी न मरा हूं, न मर सकता हूं। कोई भी कभी नहीं मरा है, न मर सकता है। लेकिन इसे जानने में मृत्यु की सारी सीढ़ियाँ उतरनी पड़ेंगी। तो तीन सीढ़ियाँ मैं आपको अपनी बताना चाहता हूं और अभी हम प्रयोग भी करेंगे। कौन जाने इस तट पर वह घटना घट जाय और आपकी समाधि बन जाय। वह समाधि नहीं, जो दूसरे बनाते हैं, वह जो स्वेच्छा से आप निर्मित कर लेते हैं।

तीन चरण हैं। पहला चरण तो है शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना है कि ऐसा लगने लगे कि वह दूर ही पड़ा रह गया है। हमारा उससे कुछ लेना देना नहीं है। शरीर से सारी ताकत को भीतर खींच लेना है। हमने शरीर में ताकत डाली हुई है। जितनी हम खींच लेते हैं उतनी खींच लेते हैं उतनी खींच ली जाती है। आपने कभी ख्याल किया है? किसी से झगड़ा हो जाय तो आपके शरीर में ज्यादा ताकत कहीं से आ जाती है और आप इतना बड़ा पत्थर उठाकर फेंक सकते हैं क्रोध की हालत में जितना बड़ा पत्थर आप शांति की हालत में हिला भी नहीं सकते हैं। कभी आपने सोचा है, यह ताकत कहां से आ गयी? यह ताकत आप डाल रहे हैं। जरूरत पड़ गयी है, खतरा है, मुसीबत है, दुश्मन सामने खड़ा है। पत्थर को उठायें नहीं तो जिन्दगी खतरे में पड़ जायगी। तो अपनी सारी ताकत डाल देते हैं शरीर में।

एक बार ऐसा हुआ कि एक आदमी दो वर्षों से पैरेलाइज्ड था, लकवा लग गया था और पड़ा था अपनी खाट पर। उठ नहीं सकता था, हिल नहीं सकता था। डाक्टर इलाज कर करके परेशान हो गये और कह दिया कि जिन्दगी भर पक्षाघात ही रहेगा। फिर अचानक एक रात उस आदमी के घर में आग लग गयी। सारे लोग घर के बाहर भागे। तब उन्हें ख्याल आया कि अपने परिवार के प्रमुख को तो भीतर छोड़ आये हैं बूढ़े को। वह तो भाग भी नहीं सकता, उसका क्या होगा। लेकिन अंधेरे में कुछ लोग मशालें लेकर आये तो देखा कि बूढ़ा उनके पहले निकल आया। उन सबने पूछा, आप चलकर आये क्या ? उसने कहा अरे, और वहीं खाट पर आकर गिर पड़ा। उसने कहा, मैं तो चल ही कैसे सकता हूं। यह कैसे हुआ ? लेकिन चल चुका था वह, हुआ का सवाल ही न था। आग लग गयी थी घर में, सारा घर भाग रहा था। एक क्षण में वह भूल गया कि मैं लकवा का बीमार हूं। सारी शक्ति वापस शरीर में उसने डाल दी लेकिन बाहर आकर जब मशाल जली और लोगों ने देखा, आप। आप बाहर कैसे आये ? उसने कहा, अरे मैं तो लकवे का बीमार हूं। वह वापस गिर पड़ा, उसकी शक्ति फिर पीछे लौट गयी। अब उसकी ही समझ के बाहर है, यह कैसे घटना घट गयी। उसे सब समझा रहे हैं कि तुम्हें लकवा नहीं है क्योंकि तुम इतना तो चल सकते हो और अब तुम जिन्दगी भर चल सकते हो। लेकिन वह कहता है कि मेरा तो हाथ भी नहीं उठता है, पैर भी नहीं उठता है। यह कैसे हुआ, मैं भी नहीं कह सकता। पता नहीं कौन मुझे बाहर ले आया। कोई उसे बाहर नहीं ले आया था, वह खुद ही बाहर आया था लेकिन उसे पता नहीं कि उसके खतरे की हालत ने सारी शक्ति उसकी आत्मा में डाल दी और यह भी उसका भाव है कि उसने शक्ति सारी फिर अपने भीतर खींच ली और ऐसा लकवे के एकाध मरीज के साथ हुआ हो ऐसा नहीं है, ऐसी सैकड़ों घटनाएं पृथ्वी पर घटी हैं जबकि लकवे का आदमी बाहर आ गया है। आग लगने की हालत में या कोई खतरा की हालत में भूल गया है कि मैं किस हालत में हूं। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि शरीर में हमारी शक्ति डाली हुई है लेकिन निकालने का हमें कोई रास्ता पता नहीं कि हम वापस कैसे निकालें। रात में इसीलिए हमें आराम मिल जाता है कि अपने आप शक्ति वापस चली जाती है भीतर और शरीर शिथिल होकर पड़ जाता है। सुबह हम फिर ताजे हो जाते हैं लेकिन कुछ लोग रात को भी अपनी शक्ति बाहर नहीं निकाल पाते हैं। तब नींद मुश्किल हो जाती है। नींद का नाम है, सिर्फ एक ही बात का लक्षण है कि शरीर में डाली गयी ताकत पीछे लौटने का रास्ता नहीं जानती है। ध्यान के लिए पहला मृत्यु में प्रवेश का जो चरण है वह शरीर से सारी शक्ति को निकालना है। अब यह बड़े मजे की बात है कि सिर्फ भाव करने से शक्ति वापस लौट जाती है। अगर थोड़ी देर तक कोई मन में यह भाव करता रहे कि मेरी शक्ति अन्दर वापस लौट रही है और शरीर शिथिल होती जा रही है तो वह पायेगा कि शरीर शिथिल हो गया है और शरीर उस जगह पहुंच जायेगा कि खुद ही अपना हाथ उठाना चाहेंगे तो नहीं उठा सकेंगे, सब शिथिल हो जायगा। यह हमारा भाव है जो हम शरीर से वापस खींच सकते हैं। तो पहली तो बात है शरीर से सारे प्राण का भीतर वापस पहुंच जाना। तो शरीर खोल की तरह पड़ी रह जायगी और बार बार ऐसा दिखायी पड़ेगा कि नारियल में फासला पड़ गया है। हम अलग हो गये हैं और शरीर की खोल बाहर पड़ी है वस्त्रों की भांति। फिर दूसरी बात है श्वांस को शिथिल छोड़ना। श्वांस और गहरे में हमारे प्राणों को पकड़े हुए है इसलिए श्वांस के टूटते ही आदमी मर जाता है। श्वांस और गहरे में हमें शरीर से जोड़े हुए है। श्वांस शरीर और आत्मा के बीच सेतु है इसलिए श्वांस को हम प्राण कहते हैं। वह गयी कि प्राण गया लेकिन बहुत प्रयोग इस संबंध में होते हैं और अगर कोई व्यक्ति अपनी श्वांस को पूरा शिथिल छोड़ दे तो धीरे धीरे श्वांस उस जगह आ जाती है कि भीतर पता ही नहीं चलता है कि श्वांस चल रही है कि नहीं चल रही है। कई बार शक हो जाता है कि कहीं मैं मर तो नहीं गया। यह श्वांस चल नहीं रही है, हुआ क्या है। श्वांस इतनी शांत हो जाती है कि पता ही नहीं चलता कि चल रही है कि नहीं

चल रही है। अगर एक क्षण के लिए भी श्वांस ठहर जाती है, ठहरना नहीं है, क्योंकि जिसने ठहराया है उसकी श्वांस कभी नहीं ठहरेगी। ठहराया कि बाहर निकलने की कोशिश करेगी। अगर बाहर रोका तो तुरन्त भीतर जाने की कोशिश करेगी इसलिए मैं कह रहा हूं, अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करना है, सिर्फ शिथिल छोड़ते जाना है, शांत, शांत, शांत। धीरे धीरे श्वांस एक बिन्दु पर जाकर ठहर जाती है और एक क्षण को भी ठहर जाय तो उसी क्षण आत्मा और शरीर के बीच अनन्त फासला दिखायी पड़ जाता है। जैसे बिजली चमक जाय अभी और मुझे आप सबके चेहरे दिखलायी पड़ जायें एक क्षण में, फिर बिजली खो जाय लेकिन फिर मैंने आपके चेहरे देख लिए। ठीक एक क्षण को जब श्वांस बिल्कुल मध्य में ठहर जाती है तो एक क्षण के लिए बिजली कौंध जाती है पूरे व्यक्तित्व में और दिखायी पड़ जाती है कि शरीर अलग मैं अलग। मृत्यु घटित हो गयी। तो दूसरे तल पर श्वांस को शिथिल छोड़ना है और तीसरे तल पर मन को शिथिल छोड़ना है क्योंकि अगर श्वांस भी शिथिल हो जाय और मन शिथिल न हो पाये तो बिजली कौंध जायेगी लेकिन आपको दिखायी नहीं पड़ेगी कि क्या हुआ क्योंकि मन तो अपने विचार में उलझा रहेगा। अगर यहां बिजली चमक जाय और मैं अपने ख्यालों में खोया रहूं तो बिजली चमक जायगी तब मुझे पता चल जायगा, अरे कुछ हो गया लेकिन तब तक बिजली चमक चुकी है और मैं अपने विचारों में खोया रह गया हूं। बिजली तो चमक जायेगी श्वांस के ठहरते ही लेकिन उस पर ध्यान नहीं जायेगा और मौका चूक जायेगा। इसलिए तीसरी चीज है विचार को शिथिल छोड़ देना।

अंतर्स्फुरणा

मेरी दृष्टि में १९६९ की दो ऐतिहासिक विश्व घटनायें :–

(१) चंद्र पर मानव का पदार्पण।

(२) भारत विभूति महात्मा गांधी की कड़ी से कड़ी आलोचना करके, आचार्य श्री रजनीश ने अपनी जान पर बाजी लगाकर, गांधी-शताब्दि में गांधीजी को अपनी अभयता की श्रद्धांजलि प्रेमपूर्वक अर्पित की, और आने वाले गांधी को और निखर कर आने की चुनौती भी दी।

अगर गांधीजी कहीं होंगे, तो निश्चित ही पूर्ण प्रसन्न होंगे, क्योंकि, अंतिम क्षण तक उनकी आंखें ऐसे व्यक्तित्वको ढूंढ़ती थीं, जो असत्य को कभी भी बरदास्त न करे, और सत्यको सदा निरावरण करे।

–जयवंती–
जुनागढ़

पत्र प्रेरणा

(आचार्य श्री के पास प्रति सप्ताह बहुत बड़ी संख्या में देश के कोने-कोने से पत्र आते हैं। उन पत्रों के उत्तर के माध्यम से हम आप सबको आचार्य श्री की जीवन दृष्टि के विभिन्न आयामों से परिचित कराने का प्रयास करते। प्रस्तुत हैं नीचे ऐसे ही छः पत्र :)

१. श्री जयंती लाल, भाव नगर को लिखा गया पत्र :

मेरे प्रिय,

प्रेम। तुम्हारा पत्र मिला।

काम–वासना से भयभीत न हों।

क्योंकि भय हार की शुरूआत है।

उसे भी स्वीकार करें।

वह भी है और अनिवार्य है।

हां —उसे जानें जरूर—पहचानें।

उसके प्रति जागें।

उसे अचेतन (Unconscious) से चेतन (Conscious) बनावें।

निंदा से यह कभी भी नहीं हो सकता है।

क्योंकि, निंदा दमन (Repression) है।

और दमन ही वृत्तियों को अचेतन में ढकेल देता है।

वस्तुतः तो दमन के कारण ही चेतना चेतन और अचेतन में विभाजित हो गई है।

और यह विभाजन समस्त द्वन्द (Conflict) का मूल है।

यह विभाजन ही व्यक्ति को अखंड नहीं बनने देता है।

और अखंड बने बिना शांति का, आनंद का, मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है।

इसलिए काम–वासना पर ध्यान करो।

जब वह वृति उठे तो ध्यान पूर्वक (Mindfully) उसे देखो।

न उसे हटाओ, न स्वयं उससे भागो।

उसका दर्शन अभूतपूर्व अनुभूति में उतार देता है।

और ब्रह्मचर्य इत्यादि के संबंध में जो भी सीखा-सुना हो

उसे एक बारगी कचरे की टोकरी में फेंक दो

क्योंकि, इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होने का और कोई मार्ग नहीं है।

वहाँ सबको मेरा प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

१६।२।७०

२. श्री जयंत भट, नव सर्जन स्कूल, नारगोल को लिखा गया पत्र :

मेरे मित्र
प्रेम । आनन्द को चाहो ही मत ।
क्योंकि, वह चाह ही आनन्द के मार्ग में बाधा है ।
जीवन को जियो ।
चाह के किनारों में बाँधकर नहीं ।
लक्ष्य की मंजिल को ध्यान में रखकर नहीं ।
जियो । उन्मुक्त ।
जियो । पल पल ।
और डरो मत ।
भयभीत न होओ ।
क्योंकि खोने को कुछ भी नहीं है ।
और पाने को कुछ भी नहीं है ।
और जिस क्षण ऐसे हो रहोगे उसी क्षण जीवन का सब कुछ मिल जाता है ।
लेकिन, भूलकर भी जीवन के द्वार पर भिखारी होकर मत जाना ।
कुछ मांगते हुए मत जाना ।
क्योंकि वह द्वार भिखारियों के लिए कभी खुलता ही नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
१७।२।७०

३. सुश्री अनुसूया बहन, बंबई को लिखा गया पत्र :

प्यारी अनुसूया,
प्रेम । लिखा है तूने कि टूट सी गई है ।
अच्छा हो कि बिल्कुल ही टूट जा, मिट ही जा ।
जो है—वह तो सदा ही है, लेकिन जो हुआ है वह तो टूटेगा ही ।
होना मिटाने की तैयारी है ।
और इसलिए स्वयं को बचाना ही मत ।
जो बचाता है, वह नहीं बचता है ।
और जो मिट जाता है वह उसे पा लेता है जोकि मिटने और बनने के बाहर है ।
लेकिन तू स्वयं को बचाने में लगी है !
इसलिए तो टूटना अखरता है !
लेकिन बचाने को है भी क्या ?
और जो बचाने योग्य है वह तो बचा ही हुआ है ।

रजनीश के प्रणाम
१६।२।७०

४. सुश्री कुसुम बहिन लुधियाना को लिखा गया एक पत्र :

प्यारी कुसुम,
प्रेम, तेरा पत्र मिल गया है।
गर्मी के बाद जैसे धरती वर्षा के लिए प्यासी होती है।
ऐसे ही तू प्रभु के लिए प्यासी है।
यह प्यास ही तो उसकी बदलियों के लिए निमंत्रण बन जाती है।
और निमंत्रण पहुंच गया है।
तू तो बस ध्यान में ही डूबते जा।
उसकी करूणा की वर्षा तो होगी ही।
बस इधर तल तैयार भर हों—वह तो उधर सदा ही तैयार है।
देख---क्या आकाश में उसकी बदलियां नहीं मंडराने लगी हैं ?
कपिल से प्रेम।
असंग को आशीश।

रजनीश के प्रणाम
१६।२।७०

५. श्री यशवंत मेहता, २१/२२ प्रीतम नगर, एलिस ब्रिज, अहमदाबाद को लिखा गया पत्र :

मेरे प्रिय,
प्रेम। विश्राम परम लक्ष्य है, श्रम साधन।
पूर्ण विश्राम परम लक्ष्य है जहां कि श्रम से पूर्ण मुक्ति है।
फिर जीवन लीला है।
फिर श्रम है तो खेल है।
ऐसे खेल से ही समस्त संस्कृति का जन्म हुआ है।
काव्य, दर्शन, धर्म सब विश्राम की उपलब्धियाँ हैं।
आज तक सबके लिये ऐसा नहीं हो सका है।
लेकिन टेकनोलाजी और विज्ञान के द्वारा भविष्य में यह संभव है।
इसलिए ही मैं टेकनोलाजी के पक्ष में हूं।
लेकिन जो श्रम में किसी आंतरिक मूल्य (Intrinsic value) का दर्शन करते हैं,
वे यंत्रों का विरोध ही करते हैं, और कर सकते हैं।
मेरे लिए श्रम में कोई आंतरिक मूल्य नहीं है।
विपरीत, वह एक बोझ है।
जब तक विश्राम के लिए श्रम आवश्यक है, तब तक श्रम आनंद नहीं हो सकता है।
जब विश्राम से और परिणामतः स्वेच्छा से श्रम निकलता है, तभी वह आनंद होता है और हो सकता है।
इसलिए मैं "आराम" को "हराम" करने में असमर्थ हूं।
फिर मैं त्याग का भी समर्थक नहीं हूं।

मैं यह भी नहीं चाहता हूं कि एक व्यक्ति दूसरे के लिए जिए या एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी के लिए 'कुर्बानी' करे।
ऐसी कुर्बानियां बहुत मंहगी पड़ी हैं, और जो उन्हें करता है वह उनके बदले में अमानवीय अपेक्षायें करने लगता है।
बापों की बेटों से असंभव अपेक्षाओं का कारण ही यही है।
फिर यदि हर बाप अपने बेटे के लिए जिये, तो कोई भी कभी जी ही नहीं पायेगा, क्योंकि हर बेटा बाप बनने को है।
नहीं———मैं तो चाहता हूं कि प्रत्येक अपने लिए जिए———अपने सुख के लिए——अपने विश्राम के लिए।
बाप जब सुखी होता है तब अपने बेटे के लिए सहज ही बहुत कुछ कर पाता है।
वह सब उसके बाप और सुखी होने से ही निकल आता है।
वह 'कुर्बानी' नहीं है और न ही 'त्याग' है।
वह सब तो बाप होने का आनंद है।
और तब वह बेटों से अमानवीय अपेक्षायें नहीं रखता है।
और जहां अपेक्षाओं का दबाव नहीं, वहां अपेक्षायें भी पूरी हो सकती हैं।
वह पूरा होना भी बेटे के बेटे होने से निकलकता है।
संक्षेप में, मैं प्रत्येक व्यक्ति को स्वार्थी होना सिखाता हूं।
परार्थ की शिक्षाओं ने मनुष्य को आत्मघात के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सिखाया है।
और आत्मघाती मनुष्य सदा ही परघाती होता है।
दुखी दूसरों को भी दुख बांटता रहता है।
मैं भविष्य के लिए भी वर्तमान की बलि चढ़ाने के विरोध में हूं।
क्योंकि जो है, वह वर्तमान है।
उसे जियें उसकी पूर्णता में और फिर उससे भविष्य भी जन्मेगा।
लेकिन वह भी जब आयेगा तब वर्तमान हो होगा।
और जिसने वर्तमान को भविष्य पर बलि करने की आदत बनाली है उसके लिए भविष्य कभी भी आने को नहीं है।
क्योंकि जो आता है वह सदा न आये के लिए बलि कर दिया जाता है।
और अंततः आपने पूछा है कि आप भी तो दूसरों के लिए और भविष्य के लिए श्रम कर रहे हैं।
प्रथम तो मैं श्रम कर ही नहीं रहा हूं।
क्योंकि जो भी मैं कर रहा हूं वह मेरे विश्राम का ही बहाव है।
मैं तैर नहीं रहा हूं——बस बह ही रहा हूं।
और दूसरों के लिए कोई कभी कुछ कर ही नहीं सकता है।
हां——जो मैं हूं, उससे दूसरों के लिए कुछ हो जाये तो वह दूसरी बात है।
उसमें भी मैं कर्त्ता नहीं हूं।
और रहा भविष्य ?
सो मेरे लिए तो वर्त्तमान ही सब कुछ है।
अतीत भी वर्त्तमान है——जो जा चुका और भविष्य भी——जो कि आने को है।
और जीना तो सदा—अभी और यहाँ (Here & Now) है, इसलिए मैं अतीत और भविष्य की चिंता नहीं करता हूं।
और आश्चर्य तो यह है कि जब से मैंने उनकी चिंता छोड़ी है तबसे वे मेरी चिंता करने लगे हैं।
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
२।१।१९७८

६. श्री मथुरा बाबू, पटना को लिखा गया पत्र :

प्रिय मथुरा बाबू,
प्रेम। पत्र मिला है।
प्रयोजन खोजते ही क्यों हैं ?
खोजेंगे तो वह मिलेगा ही नहीं।
क्योंकि, वह तो सदा खोजने वाले में ही छिपा है।
जीवन निष्प्रयोजन है।
क्योंकि, जीवन स्वयं ही अपना प्रयोजन है।
इसलिए जो निष्प्रयोजन जीता है, वही केवल जीता है।
जियें———और क्या जीना ही काफी नहीं है ?
जीने से और ज्यादा की आकांक्षा जी ही न पाने से पैदा होती है।
और इससे ही मृत्यु का भय भी पकड़ता है।
जो जीता है, उसकी मृत्यु ही कहाँ है ?
जीना जहाँ समग्र और सघन है, वहाँ मृत्यु के भय के लिए अवकाश ही नहीं है।
वहाँ तो मृत्यु के लिए भी अवकाश नहीं है।
लेकिन प्रयोजन की भाषा में न सोचें।
वह भाषा ही ऋण है।
आकाश निष्प्रयोजन है।
परमात्मा निष्प्रयोजन है।
फूल निष्प्रयोजन खिलते हैं।
और तारे निष्प्रयोजन चमकते हैं।
तो बेचारे मनुष्य ने ही क्या बिगाड़ा है, कि वह निष्प्रयोजन न हो सके ?
लेकिन मनुष्य सोच सकता है, इसलिए उपद्रव में पड़ता है।
थोड़ा सोच सदा ही उपद्रव में ले जाता है।
सोचना ही है तो पूरा सोचें।
फिर सिर घूम जाता है और सोचने से मुक्ति हो जाती है।
और तभी जीने का प्रारंभ होता है।

रजनीश के प्रणाम
२।१।१९७०

●●●

युवक क्रांति दल को उद्‌बोधन

(जबलपुर में युक्रांद के उद्‌घाटन पर आचार्य श्री द्वारा दिया गया मार्ग निर्देशन)

संकलन : युक्रांद जबलपुर ।

युवक क्रान्ति दल के उद्‌घाटन के अवसर पर दो तीन बातें मुझे कहने को ख्याल पड़ती हैं । एक तो यह बात समझने जैसी है कि मनुष्य के इतिहास में युवक बहुत नई घटना है । उम्र से युवा लोग तो हमेशा से थे, लेकिन मन से युवा व्यक्तित्व पहली बार पैदा हुआ है । और इसलिए उसको समझना भी मुश्किल हो रहा है । उसे समझने और समझाने के लिए पुराने समाज और पुराने मन के पास कोई व्यवस्था ही नहीं थी । वह घटना ही नई है । जब तक दुनियां में बाल विवाह था तब तक बच्चे होते थे और बूढ़े होते थे, युवक होता ही नहीं था । जिन बच्चों का विवाह हो जाता था वह भी युवा नहीं हो पाते थे । विवाहित व्यक्ति बचपन से सीधा वृद्ध अवस्था में चला जाता था । बीच का काल विलीन हो जाता था । इसलिए पुरानी दुनिया में बच्चे थे और बूढ़े थे । बाल विवाह दुनियां से हट जाने के बाद एक नई घटना घटी है और वह युवक पैदा हुआ है। बाल विवाह के मिटने ने एक बहुत अद्‌भुत स्थिति बना दी है । जो शक्ति विवाह के मार्ग से व्यय हो जाती थी वह युवक के पास इकट्ठी हो गई है । और शक्तियां यदि इकट्ठी हों और कोई मार्ग न हो, कोई सृजनात्मक व्ययस्था न हो तो शक्तियां विध्वंश हो जाती हैं ।

आज युवकों का सारे जगत में जो विध्वंश है, जो शक्ति उनके पास है, उसके उपयोग का कोई मार्ग नहीं है । और पुराने मनुष्य ने उन्हें उपयोग करने के लिए कुछ विचार भी नहीं किया । पुराने मनुष्य के सामने यह सवाल और समस्या ही नहीं थी । तो युवक क्रांति दल की पहली दृष्टि तो यह है कि जो युवक नाम की घटना घट गई है उस घटना को मनुष्य के जीवन में सृजनात्मक कैसे बनाया जाय वह क्रियेटिव कैसे हो । दूसरी इस बात की स्वीकृति कैसे हो सके कि वह पृथ्वी पर आ गया है । स्वीकृति भी नहीं है । कठिनाई इसलिए होती है कि उम्र से युवक तो सदा से थे । इसलिए हमें लगता है युवा हमेशा से रहा है अगर युवा हमेशा से रहा है तो आज की समस्यायें बहुत पहिले पैदा हो जानी चाहिए थीं लेकिन वे पहिले पैदा नहीं हुईं वे आज ही पैदा हुई हैं । मेरा कहना है युवक की समस्याएँ ही नई नहीं हैं युवक ही नई घटना है उसके साथ उसकी समस्यायें आई हैं जो पहिले नहीं थीं । जब शक्ति ज्यादा होगी मार्ग न होगा तो विध्वंश होगा । विध्वंश बहुत रूप लेगा । सबसे सस्ते रूप हैं : मकान तोड़ डालना, कांच टूट जाना, बसें जल जाना ये सबसे सस्ते हैं । अभी हम इनसे ही परेशान हैं यह बिल्कुल प्राथमिक कड़ी है । यह कोई मंहगी कड़ी नहीं हैं, यह बिल्कुल पहला चरण है । अमरीका और यूरोप का युवक और आगे चला गया है अब वह कांच नहीं तोड़ रहा, दीवारें नहीं तोड़ रहा, बसें नहीं जला रहा । अब तो वह पुरानी नीति के सारे आधार गिरा रहा है । पुराने धर्म की सारी मान्यतायें गिरा रहा है पुराने सम्बन्धों का सारा जाल गिरा रहा है । एक कांच खिड़की का टूट जाय कुछ बनता बिगड़ता नहीं है । पिता और बेटे का सम्बन्ध ही टूट जाय तब हमें पता चलेगा बनना बिगड़ना क्या है ? एक मकान में आग लगा दी जाय कुछ बनता बिगड़ता नहीं, मकान फिर बन सकते हैं । लेकिन शिक्षक और विद्यार्थी के बीच के सारे सम्बन्ध

टूट जायें, तब बहुत कुछ बिगड़ता है जो बनाना बहुत मुश्किल हो जाता है। शायद फिर बनाना कठिन हो जाता है। कुछ चीजें हैं जो टूट जायें तो उनको जोड़ना मुश्किल हो जाता है कांच की तरह। उनमें जोड़ हमेशा दिखाई देते रहते हैं और यदि सारी मान्यतायें और सारे मूल्य जो हमने बनाये हैं यदि वे सभी के सभी एक साथ विछिन्न हो जायें और नये मूल्य निर्मित न हो पाये तो एक ऐसी अराजकता का काल बीच में पैदा हो जाता है जो मनुष्य जाति को लेकर डूब सकता है।

आज अमरीका में ३० लाख युवक युवतियां सब तरह से उच्छृंखल हैं जिन्होंने सारी पुरानी जीवन व्यवस्था के मूल्य छोड़ दिये हैं न वे नौकरी करते हैं, न पढ़ते हैं, न वे माँ बाप के साथ रहते हैं वे घर बना के जंगलों या छोटे गाँवों में कहीं भी पड़े रहते हैं और उनका पिता अगर उनसे कहे कि तुम पढ़ो लिखो तो लड़का पूछता है पढ़ लिखके आपको क्या मिल गया है ? समाज को क्या मिल गया है ? और पिता के पास उत्तर नहीं है। युवा लड़कियां हैं जो युवकों के साथ हैं बच्चे हो जाते हैं और अगर उनकी मां उनको समझाती है तो लड़की कहती है कि विवाहित और अविवाहित में बच्चा हो जाने में क्या फर्क है और तुम विवाहित थीं तुमने जीवन का कौन सा सुख पा लिया है—जो तुम आतुर हो ? हमने तुम्हारे जीवन का नरक भली भांति देख लिया है अब हम उस नरक में जाने को राजी नहीं है। शराब पी रहे हैं, नाच रहे हैं, चीजें तोड़ रहे हैं कुछ चीजें तो इस मुल्क में आई ही नहीं हैं जिनकी हमें कल्पना ही नहीं है। शराब सबसे बड़ा नशा है। अमरीका में नये नशे ईजाद कर लिए हैं जैसे एल. एस. डी. है, मैक्सिलीन हैं, मरी ज्वाना बहुत नये नशे हैं जिनका हमारे पास कोई मुकाबला ही नहीं है। लाखों लड़के एल० एस० डी० लेकर पड़े हुए हैं मरी ज्वाना ले रहे हैं होश में नहीं हैं मस्तिष्क के सारे तन्तु विकृत एवं विक्षिप्त हुए जा रहे हैं। यह आज नहीं कल यहां भी होगा और इसके होने का कारण यह है कि युवक होने की घटना पहले दफे घटी है और जब कोई नई घटना घटती है तो हमारे पास कोई नया उपाय नहीं होता, पुरानी व्यवस्था में उसे हम कैसे सम्हालें। समझो एक आदमी है वह मिट्टी का दिया जलाकर जीता रहा है और बिजली की दुनिया से उसे कोई परिचय नहीं है और आज अचानक उसे कमरे में लाकर सुला दिया जाय और प्रकाश में उसे नींद न आये तो तुम सोचते हो वह बटन दबा देगा जा के। उसको पहिला ख्याल तो बल्ब को बुझाने का आयेगा क्योंकि बटन का बल्ब से क्या सम्बन्ध उसकी दुनियाँ में हो सकता है। वह स्टूल या कुर्सी रखकर बल्ब को बुझाये और बल्ब न बुझे तो परेशान हो जाय। यह उसको ख्याल आना ही मुश्किल है कि बटन दबाने से भी कोई प्रकाश बुझ सकता है। उसके लिए नई घटना हैं वह बेचैन और परेशान हो जायेगा। हो सकता है डण्डे से बल्ब को फोड़ दे। इतना ही कर सकता है। लेकिन उससे कोई हल नहीं होगा। जब भी नई घटनायें मनुष्य की चेतना में आती हैं तो पुरानी व्यवस्थायें उत्तर नहीं दे पातीं। और पुरानी व्यवस्थायें पुराने ही उत्तर दिये चली जाती हैं। जिनकी वजह से नए और पुराने का फासला बढ़ता चला जाता है। नया एक सवाल उठाता है जो नया है और पुराना एक उत्तर देता है जो पुराना है और इसके बीच कोई सम्बन्ध नहीं होता। तो युवक क्रांति दल इस देश में कम से कम एक चेतना पैदा करना चाहता है कि युवक होने की जो नई घटना घटी है उसे हम पूरा का पूरा समझ पायें सहानुभूति से। युवकों की पूरी समस्याओं को समझने की कोशिश करें सहानुभूति हो। नये सवाल उनके सामने उठ खड़े हुए हैं उन्हें हम पहिचानें। तो युवकक्रांति दल इस दिशामें एक कार्य करना चाहता है। ताकि युवकों की समस्यायें विध्वंशक न हो जायें और उनके पास जो शक्ति है वह जीवन को नष्ट न करने लगे।

निश्चित ही बहुत सोच विचार करना जरूरी होगा। जो बूढ़ी पीढ़ी है उससे बहुत आशा रखना कठिन मालूम होती है, जो नई पीढ़ी है वह भी कोई आशा नहीं बंधाती। स्थिति बहुत निराशाजनक है, पुरानी पीढ़ी से भी आशा रखना इसलिए कठिन है कि उसके

लिए भी इतना चौकने वाला मामला है उसको विश्वास नहीं होता कि क्या हो रहा है वह गाली देकर, निन्दा करके तृप्त हो जाता है। शिक्षक है वह दिन रात गाली दे रहा है बाप है वह दिन रात गाली दे रहा है, माँ गाली दे रही है, पुराने नेता हैं वे गाली दे रहे हैं युवकों को। गालियों से तो कोई सवाल हल नहीं होते बल्कि और उलझे चले जाते हैं क्योंकि खाई बड़ी होती है। जब पुरानी पीढ़ियाँ गाली देती हैं और निन्दा करती है तो नई पीढ़ी के सारे सम्बन्ध और भी क्षीण हो जाते हैं। और प्रतिक्रिया में और विध्वंस पैदा होता है। पुरानी पीढ़ी से कुछ आशा नहीं बंधती। नई पीढ़ी से आशा बंधना और भी मुश्किल मालूम होती है क्योंकि नई पीढ़ी कुछ सोच नहीं रही विचार नहीं रही उसे खुद भी पता नहीं है कि कहाँ खड़ी है। चौरस्ते पर, किस मार्ग पर, जहाँ आदमी के बच्चे कभी इसके पहिले नहीं खड़े थे। अभी भी उदाहरण के रूप में कुछ कहूं जो हमारे ख्याल में नहीं है। पुरानी दुनिया में वहाँ पिता बेटे से ज्यादा समझदार था हमेशा अनिवार्य रूपेण क्योंकि सब ज्ञान अनुभव से आता था। अनुभव उम्र से आता था। जो आदमी ७० वर्ष का था वह २० वर्ष के आदमी से ज्यादा बुद्धिमान था। आज हालत बदल गई है, एक नई घटना घट गई है। सम्भावना बेटे की बाप से ज्यादा बुद्धिमान होने की है। ज्ञान अनुभव से नहीं आता ज्ञान अब शिक्षण से आता है–शिक्षण का उम्र से कोई वास्ता नहीं। बल्कि मजे की बात यह है कि शिक्षण जितनी कम उम्र हो उतनी जल्दी और तीव्रता से होता है और जितनी ज्यादा उम्र हो उतना मुश्किल हो जाता है। अनुभव के लिए ज्यादा उम्र जरूरी है। शिक्षण के लिए कम उम्र जरूरी है। चूँकि हमने अनुभव की जगह शिक्षा को स्थापित कर दिया है, अनुभव को हटा दिया है बीच से-और शिक्षण की व्यवस्था ले आये हैं तो बच्चा ज्यादा जान रहा है बाप से। पुरानी दुनिया में ईसा के मरने के १८०० वर्ष में जितना ज्ञान बढ़ा, ईसा के मरने के बाद पिछले डेढ़ सौ वर्षों में उतना ज्ञान बढ़ा। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान बढ़ा उतना पिछले १०-१५ वर्ष में बढ़ा। इतनी तीव्रता से ज्ञान बढ़ रहा है। पांच वर्ष में १८०० वर्ष की छलांग पूरी हो गई तो नया बच्चा हमेशा बाप से ज्यादा जानेगा। इसलिए पिता की पुरानी प्रतिष्ठा नहीं टिक सकती। प्रतिष्ठा के नये मार्ग खोजना पड़ेंगे नहीं तो पिता खो जायेगा। गुरू की पुरानी प्रतिष्ठा नहीं टिक सकती। उसे प्रतिष्ठा के नये द्वार खोजना पड़ेंगे अन्यथा वह खो जायेगा। अब आम तौर से यदि बुद्धिमान विद्यार्थी हो तो गुरू से कभी भी ज्यादा जान सकता है आज। और साधारण विद्यार्थी और गुरू के बीच का फासला वर्षों का नहीं होता घंटों का होता है। कई बार तो एक ही घण्टे का काम होता हैं। शिक्षक एक घण्टे पहिले तैयार करके आता है और एक घण्टे बाद विद्यार्थी सुनकर तैयार हो जाता है। इतना ही फासला है। इतने फासले में बहुत आदर नहीं हो सकता। नई स्थिति ने बिल्कुल नये सवाल खड़े किये हैं। एक मेरे मित्र रूस गये हुए थे एक यूनिवर्सिटी को देखने गये हुए थे। वे देखकर बहुत हैरान हो गये क्योंकि लड़के सिगरेट पी रहे हैं क्लास में, शिक्षक पढ़ा रहा है। सिगरेट पी रहे हैं, एक लड़का पैर का जूता आराम से टेबिल पर टेककर बैठा हुआ है। हाथ में सिगरेट है–उनकी तो बर्दाश्त के बाहर हो गया। यह क्या अनुशासन-हीनता है यह कोई पढ़ाई हो रही है। यह क्लास है। जब उन्होंने प्रोफेसर से कहा तो प्रोफेसर ने कहा आप समझे नहीं विद्यार्थी मुझे इतना प्रेम करते हैं कि एट ईज (आराम में) हो सकते हैं। वे मेरे दुश्मन नहीं हैं मैं उनका दुश्मन नहीं हूं। वे मुझे इतना प्रेम करते हैं कि जैसे वे अपने घर में पैर टेककर बैठ सकते हैं वैसे क्लास में बैठ सकते हैं। यह मेरे प्रति और प्रेम का सबूत है और वे लड़के सिगरेट पी रहे हैं मेरा काम है यहां ज्यादा से ज्यादा पढ़ पायें समझ पायें। यदि सिगरेट सहयोगी हो रही है तो मैं बाधा देनेवाला नहीं हूं। मेरा काम है कि वे ज्यादा से ज्यादा समझ पायें ज्यादा से ज्यादा सीख जाय। अगर उनको सिगरेट पीने से ज्यादा Relaxed होकर समझ और सीख रहे हैं तो मैं बाधा देने वाला नहीं हूं। सिगरेट तो रोकी नहीं जा सकती है लेकिन सिगरेट रोकने से यदि उनके समझने में बाधा पड़ती है तो मँहगा पड़ जायगा। इसलिए मैं उनको रोकने वाला

नहीं हूं। यह उनकी मर्जी है। इससे मेरा कोई संबंध ही नहीं है, यह Irrelevent है, इसकी कोई संगति नहीं है हमसे। मैं पढ़ा रहा हूं वे पढ़ रहे हैं। और वे कितने ज्यादा आनन्द से, मौज से, मस्ती से पढ़ सकते हैं उसकी मुझे चिन्ता है। वे मुझे प्रेम करते हैं। इसलिए आराम से बैठे हैं। अब यह बिल्कुल नई धारणा है जो हमारे शिक्षकों को पकड़ना मुश्किल है। हमारा शिक्षक यह नहीं मान सकता आप जूता टेबिल पर रखे हुए हैं तो यह मेरे प्रति प्रेम है। यह अपमान है। यह जरूरी नहीं कि यह अपमान हो यह प्रेम भी हो सकता है। हमें यह धारणा बदलनी पड़ेगी हमें कुछ इन्तजाम करना पड़ेगा और यह भी आश्चर्यजनक है कि वह कह रहा है कि यह Irrelevent है। इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है मेरा काम है पढ़ाने का और यदि एक विद्यार्थी सिगरेट पीता है और ठीक से पढ़ सकता है तो मैं बाधा देने वाला नहीं हूं। मैं पढ़ाऊंगा। अब यह एक इतना बुनियादी फर्क है और यह फर्क है और यह फर्क सब दिशाओं में सब आयामों में पैदा हो गया है। सब तरफ हमें सोचना पड़ेगा। युवक क्रांति दल का पहिला काम तो यह है कि युवक को जो घटना घटी है पृथ्वी पर उसे सोचे विचारे। उसे समझ सके। युवक की जो समस्यायें हैं उन्हें उभार सके। उनके लिए सवाल और जवाब भी खोज सकें क्योंकि अब पहिला तो काम सवाल खोजने का है। सवाल क्या है? अक्सर यह होता है कि हम सवाल को पूरा खोजना नहीं चाहते। क्योंकि सवाल खोजने से भी डर लगता है क्योंकि हो सकता है हमारे पास उत्तर न हो। पूरे सवाल को भी नहीं खोजना चाहते। अगर लड़के लड़कियों को कालेज में धक्के देते हैं तो हम सवाल को इतना ही समझ लेते हैं कि धक्का देना सवाल है। सवाल नहीं है यह, सवाल सिर्फ लक्षण है, बहुत गहरे में खोजना पड़ेगा। अगर चौदह या पन्द्रह वर्ष के लड़के और लड़कियां पढ़ेंगे—अविवाहित होंगे सेक्सुअल मेच्योर (Sexual Mature)हो गये होंगे तो हमें प्रेम की उन्हें कोई न कोई व्यवस्था देनी पड़ेगी। पुरानी दुनिया दस बारह साल में शादी कर देती थी। पुरानी दुनिया सेक्स मेच्युरिटी के पहिले शादी कर देती थी। इसलिये प्रेम का उपाय ही न था। उन दिनों प्रेम कभी घटता ही न था। अब नई दुनिया २५ वर्ष में शादी करेगी। और पन्द्रह वर्ष में लड़का प्रौढ़ हो जावेगा। तो १० वर्ष का जो स्टारवेशन है, १० वर्ष की जो भूखी स्थिति है उसका क्या होगा। उस भूखी स्थिति के लिये हमें व्यवस्था करनी पड़ेगी। नहीं व्यवस्था करेंगे तो वह पत्थर मारेगा, ऐसिड फेकेगा। यह खतरनाक है। महंगा है, २४ घन्टे वह इसी में लगा रहेगा। व्यर्थ की बात है—कोई मतलब नहीं है। हमें अपनी पुरानी धारणा बदलनी पड़ेगी। हमें प्रेम को सम्मानित करना पड़ेगा। वह धारणा जो हमारी प्रेम के प्रति है जब बच्चा दस साल का है। २५ साल का बच्चा जब विवाहित होता है तो प्रेम की धारणा को सोचना पड़ेगा। १० साल का बच्चा ठीक है कि मां बाप जहां ठीक समझते थे विवाह करते थे। बिलकुल ठीक था। लेकिन २५ साल का बच्चा भी वहां विवाह करेगा जहां वे ठीक समझते हैं यह बिलकुल ठीक नहीं है। किसी हालत में ठीक नहीं है वह बुनियादी फर्क है। १० साल के बच्चे से कोई आशा ही नहीं थी कि वह अपने लिये कोई सोच विचार करेगा। लेकिन अगर २५ साल के बच्चे से अपेक्षा करें कि वह सोच विचार न करे तो हम बच्चों को बुद्धिमान नहीं मान रहे। बुद्धिहीन मान रहे हैं। मैं उदाहरण के लिए यह कह रहा हूं। जब बच्चों को— चुनाव करना हो खुद तो उसे प्रेम का मौका देना चाहिये। अभी हम चुनाव भी करवाते हैं तो वह बिलकुल धोखा है। एक लड़की को दिखा देते हैं कि चाय लेकर आ जाती है देख लेते हैं। वह चाय का ट्रे लेकर भीतर चली गई देख लें, पसंदकर लें यह कोई ढंग हुआ, जिसे जिन्दगी भर साथ रहना हो। एक कप में चाय ढालते हुये कोई ढंग हो सकता है। नहीं अगर बच्चों को ही निर्णय लेना है तो बच्चों को अपने प्रेम के पहिले प्रेम के परीक्षण का उपाय होना चाहिये। लेकिन यह तभी होगा जब प्रेम के लिये स्वागत होगा हमारे मन में। विरोध न हो। नई स्थिति में नई घटनाओं में जब नये सवाल उठते हैं तो सबसे पहिला काम नये सवालों की ठीक-ठीक पहिचान-फिर नये सवालों के लिये नये उत्तर की खोज।

तो युवक क्रांति दल ये दोनों काम करना चाहता है युवकों की सारी समस्याओं की सारी परेशानियों की खोज। फिर उन पर विचार विमर्श चिन्तन, विवाद–भाषण अध्ययन–मनन। और उनके लिए उत्तर क्या है। उत्तर क्या उचित समझेंगे यह हो पहला काम।

दूसरा काम, हम अपनी समस्या को पुरानी पीढ़ी के सामने रखें पुरानी पीढ़ी के साथ संघर्ष में उतर जाना समस्या का हल नहीं हो सकता। संघर्ष से कोई समस्या हल नहीं हो सकती। समस्या का समाधान रख विवादों से सब बुद्धियुक्त उपाय कर लिये गये हों। जब भी कोई सुनने को राजी न हो, पुरानी पीढ़ी बाहरा हो, न सुनती हो, तब संघर्ष का कोई सवाल उठता है। संघर्ष हमेशा अंतिम चरण हो। पर आज की परिस्थिति में वह पहिला चरण हो गया है। न सवाल है न समाधान की कोई चिन्ता है। न हमें कोई पता है क्यों हम लड़ रहे है क्या हम चाहते हैं। संघर्ष पहिली चाज है। संघर्ष हमेशा अंतिम हैं-वह आखिरी है। जब कुछ भी नहीं हो सकता तब वह है। आज ऐसा है कि वह सबसे पहिले है और फिर उसके बाद कुछ बचता ही नहीं। इसलिये हमें जो आज इतना संघर्ष दिखाई पड़ता है वह समाधानहीन संघर्ष है। कुछ फल नहीं आता। हमें सारे उपाय कर लेना चाहिये। मैं एक किताब देखता था। बात मुझे बहुत ख्याल पड़ी। उस आदमी ने लिखा है असभ्य और सभ्य आदमी में एक ही फर्क है। असभ्य आदमी किसी भी चीज का निपटारा लड़के करना चाहता है। निपटारा जो है लड़ाई उसका रास्ता है। आप ठीक हैं कि मैं ठीक हूं कौन किसको पटक सकता है कौन किसकी छाती पर चढ़ सकता है। यह निपटारा हो जाये। छुरा कौन किसको मार सकता है। यह निपटारा हो जाये। असभ्य आदमी जा है, किसी भी चीज का निर्णय शारीरिक बल पर करना चाहता है। और सभ्य आदमी किसी भी चीज का निर्णय मानसिक बल पर करना चाहता है। लेकिन यह बात सत्य है तो हम सभ्य नहीं कहे जा सकते। हम भा निपटारा ऐसे करते हैं। हमारी सरकारें भी सभ्य नहीं कहीं जा सकती। क्योंकि हमारी सरकारें भी असभ्य रास्तों के लिए झुकती हैं। सभ्य रास्तों की वे भी चिन्ता नहीं करती। अगर मैं एक ठीक बात कहता हूं, मेरी कोई नहीं सुनेगा। लेकिन मैं एक अनशन कर दूं, कह दूं मैं आग लगाकर मर जाऊँगा, तो सारा मुल्क सुनेगा। असभ्य रास्ता—यह बड़ा अशिष्ट है। यह इस बात की गवाही हुई कि मरने जीने की धमकी के सिवाय न हमारे पास कोई तर्क है, न विचार है, न कोई बुद्धि है। तो दूसरी बात मैं चाहता हूं, कि युवक उस तरह का मार्ग खोजें। मैं यह मानता हूं कि स्थितियां ऐसी हैं-पुरानी पीढ़ी हारने के कगार पर है। इसलिए संघर्ष की कोई जरूरत नहीं है। नई पीढ़ियां अगर अपनी चीजों को ठीक से प्रस्तावित कर सकें तो कोई उपकुलपति कोई शिक्षक कोई प्रोफेसर कोई पिता इंकार नहीं कर सकता। तो हर चीज के पहले एक वैचारिक भूमिका चाहिये। और वह वैचारिक भूमिका तभी हो सकती है जब तत्काल लड़ने को राजी न हो जायें। तो युवक क्रांति दल एक वैचारिक क्रांति की भूमिका तैयार करना चाहता है। जहाँ हम प्रत्येक चीज के लिए वैचारिक सुझाव प्रस्तुत कर सकें। और सबसे पहले हम विचारों को निवेदित कर सकें। सभ्य आदमी का रास्ता 'ही यह है। वह आदेश नहीं करता है लड़ता नहीं—pursued करता है और जब pursued आप कर सकते हैं तो आदेश करने की दबाने की कोई जरूरत नहीं। जब मैं आपके घर आकर आपसे बात करके आपकी बुद्धि को अपील कर सकता हूं तो आपकी खोपड़ी में लट्ठ मारने का कोई अर्थ नहीं। खोपड़ी में लगा लट्ठ आपकी बुद्धिको मेरे प्रति विरोध से ही भरने वाला है। मेरे प्रति सद्भावना से नहीं। तो इस समय इस देश के सामने बड़ा सवाल है कि हम वैचारिक भूमि पर पुरानी पीढ़ियों के साथ तालमेल बैठाल सकें। युवक क्रांति दल उसकी भी फिक्र करना चाहता है कि हम पुरानी पीढ़ी के साथ तालमेल बैठा सकें। युवक क्रान्त दल उसकी भी फिक्र करना चाहता है। कि हम पुरानी पीढ़ी के साथ तालमेल बैठा सकें। और तालमेल में कठिनाई नही है अगर एक दफे कोई विचार-युक्त समाधान सामने हो। कि जैसे लड़के धक्के देते हैं लड़कियों का या कि पत्थर मारें, उन्हें अपना

University के सामने सुझाव रखना चाहिये कि उन्हें प्रेम के लिये स्वीकृति मिलना चाहिये। और प्रेम सम्मानित होना चाहिये। प्रेम अपमानित नहीं होना चाहिये। उन्हें प्रेम के लिये एक हवा पैदा करना चाहिये। उन्हें प्रेम के लिये एक हवा और एक भूमिका पैदा करना चाहिये। जैसे ही प्रेम को हवा और भूमिका होगी तुम जिस लड़की को प्रेम करते हो उसे तुम धक्का नहीं मारोगे। क्योंकि प्रेम करने का यह कोई ढंग न हुआ। यह दुश्मनी करने का ढंग हो भी सकता है। लड़के और लड़कियों को निकट लाने का उपाय बनाने चाहिये। उनमें धक्का देने का पागलपन इसलिये पैदा होता है कि उनको इतने फासले पर रखते हैं, कि अगर मौका मिल जाये तो वे धक्के देकर पास आने की कोशिश करें और कुछ नहीं वह हमारा फासले में रखने का परिणाम है, कि वे पास आना चाहते हैं। एक कक्षा है उसमें सह-शिक्षा सब कुछ है। लेकिन सब कुछ अलग है। एक तरफ लड़के बैठें एक तरफ लड़कियां। लड़के लड़कियों के साथ बैठना चाहिये। उनके साथ बैठने के कारण बाहर के धक्के मुक्के कम हो जायेंगे। क्योंकि जिस लड़की के साथ तुम बैठ लिये हो, तुमने अनुभव किया कि शरीर के पास बैठ जाने से कुछ नहीं हो जाता है और तुम उसे धक्का देने की आतुरता से मुक्त हो जाते हो। लेकिन इन सबके लिये हमें वैज्ञानिक अर्थों में सुझाव, हवा, वातावरण का एक मंच पैदा करना चाहिये। जो भी बात हो, चर्चा हो हवा हो, जो हमारे मसले हैं। उन्हें हमें पहले लड़ना चाहिए। कोशिश करना चाहिये हमारे भीतर विचार, और विवाद से। फिर उन्हें समाज के सामने ले जाना चाहिये, कि हमारे सवाल हैं, और ये हमारे समाधान भी हैं। अगर तुम्हारे पास इससे भी बेहतर समाधान हैं तो हम सुनने को तत्पर हैं। तो इसका काम है : पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच एक सेतु एक ब्रिज बनाने का। पुल क्यों टूटता चला जा रहा है। करीब २ ऐसी हालत है कि बाप और बेटे के बीच कोई बात नहीं हो पाती कोई संवाद ही नहीं। बेटा बाप के पास तभी जाता है सामने जब उसको पैसा चाहिये। और बाप तभी खोजता है जब उसे डांटना डपटना हो। बाकी दोनों का तालमेल ही नहीं। जिस कमरे में पिता होता है बेटा नहीं। बेटा होता है उसमें बाप नहीं होता। जिस समय बाप घर होता है, बेटा नहीं होता है। यह अजनबी होना है जिसका कोई हिसाब नहीं। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच कोई संवाद नहीं। ऐसा नहीं है कि विद्यार्थी की समस्यायें शिक्षक समझने की कोशिश कर रहा है, या शिक्षक की मुसीबतें समझने की कोशिश विद्यार्थी कर रहा है। मैं मानता हूं कि इनके बीच संवाद पैदा हो सके– पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच एक वार्ता एक चर्चा एक विचार का क्षेत्र बन सके। उसकी कोशिश करना चाहिये।

और तीसरी कोशिश, युवक क्रान्ति दल को यह भी करनी चाहिये की हमारी कठिनाई सदा की है, कि जो भी चीजें out of date हो जायें तो समय के बाहर पड़ जाती हैं। मनुष्य का मन उनको भी पकड़े लिये चला जाता है। मनुष्य का मन उनको छोड़ नहीं देता। वह उनको पकड़े लिये चला जाता है। इसलिये हम कभी सम सामयिक Contemporary नहीं हो पाते अभी इतने लोग बैठे हैं। इनमें कोई आदमी ५० साल पुराना हो सकता है। कोई २ हजार साल पुराना हो सकता है। और कोई ५ हजार साल पुराना हो सकता है। और अधिक मौके तो यह हैं कि हमारे भीतर सभी सदियां एक साथ जीती हैं। सब तरह के पुराने ख्याल इकट्ठे हमारे साथ खड़े रहते हैं उनमें असंगतियां हैं। विरोध हैं। एक दूसरे के दुश्मन हैं। वे भी हमारे भीतर खड़े रहते हैं। ये जाते नहीं। और उनकी मौजूदगी और उनके मोह के कारण हम भविष्य के लिये कुछ सोच नहीं पाते। नये चिन्तन की संभावना तभी है, जब पुराने से छुटकारा हो। छुटकारा का मतलब विरोध नहीं। अगर विरोध है, तो भी छुटकारा नहीं हुआ। क्योंकि यह भी एक लगाव है। छुटकारे का मतलब एक चीज व्यर्थ हो गई हम उसके बाहर हो जाते हैं। अब एक लड़का M. Sc. पढ़ रहा है। वह हनुमान जी के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ है वह कहता है पास करवा देना। वह पढ़ता M Sc. उसके पास एक वैज्ञानिक बुद्धि चाहिये। लेकिन वह पास होने के लिये नारियल चढ़ाने की तरकीब उपयोग में ला रहा है। जिसका

वैज्ञानिक बुद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं। और हनुमान जी का क्या लेना देना उससे, उसके पास होने से। परीक्षा उसको देनी है हनुमान जी को नहीं। तो वह झंझट में हैं नहीं इसकी, यह उनको पसन्द नहीं। बताईये यह आदमी जिम्मेवारी उनपर डालने क्यों चला गया। और अगर यह आज हनुमान जी के मंदिर पर नारियल चढ़ाता है तो कल यह प्रोफेसर के जेब में ५) का नोट रखदे तो ये संगति है --क्योंकि असल में मामला यह है कि अगर वह कल चोरी करता है और कापी नकल करता है किसी की तो उसमें संगति है, वह हनुमान जी वाला ही मामला है असल में, बुनियादी बात यह है कि पास इनको होना है और होना किसी और के जरिए है। जब यह हनुमान के मंदिर के सामने खड़ा हुआ है तो, पढ़ना इसे है, वह पढ़ना नहीं चाहता क्योंकि अगर यह पढ़ना चाहे तो हनुमान से कहने की कोई जरूरत नहीं। इसे पास होना है, वह भी जिम्मेवारी इसकी नहीं। वह भी हनुमान की है, इसकी जिम्मेवारी है कि यह नारियल चढ़ा दे। तो फिर सब तरह की रिश्वत, सब तरह का भ्रष्टाचार, सब तरह की चोरी इसमें प्रविष्ट हो जायेगी। अब यह हनुमान जी के मंदिर के सामने खड़ा होना कोई दस हजार साल पुरानी घटना है, जब आदमी के पास कोई उपाय न था कुछ करने का। जब वह सब चीजों के लिए किसी और पर निर्भर होता था, अब जब कि सब उपाय उस पर अपने पर निर्भर हैं तब वह दस हजार साल पुरानी मनोदशा का उपयोग करे तो मुश्किल में पड़ जायेगा। तो उसके मन में एक तनाव पैदा हो जायेगा। वह दस हजार साल पहिले भी एक पैर रखे हुए है और दस हजार साल बाद भी एक पैर रखे हुए है, दोनों के बीच असंगति है, उसकी मुसीबत हो जायेगी। उसके भीतर Conflict और परेशानी हो जायेगी कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। अब मैं मानता हूं कि हमारे जैसे देश में जो इतनी रिश्वत है उसका कुल कारण यह है कि हम भगवान को बहुत दिनों से रिश्वत देते रहे हैं। वही उसका कारण है गहरे में। याने हमको यह पता है कि जब भगवान तक रिश्वत से राजी होता है तो साधारण आदमी का क्या वश। जिन भगवान को भी पांच आने देकर हम अपनी तरफ कर लेते हैं तो एक साधारण आदमी को एक शिक्षक को, एक प्रोफेसर को या एक टिकिट कलेक्टर को अपनी तरफ कर लेने में क्या हर्ज है। इसलिए हमारे मन में हर्ज नहीं पैदा होता। अब मेरा मानना है कि अगर मुल्क से रिश्वत मिटानी हो तो हमें वह भगवान को जो रिश्वत देने की धारणा है उसके ऊपर उठ जाना होगा नहीं तो रिश्वत नहीं मिटेगी। अब ऊपर से देखने में रिश्वत में और उसमें कोई सम्बन्ध दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन सम्बन्ध है। उन दोनों में जोड़ है। उसमें ताल--मेल है। अब विज्ञान की जितनी भी धारणायें हैं वे सब गैर भाग्यवादी हैं वे सब पुरुषार्थवादी हैं और हमारा जो चित्त है वह बिल्कुल भाग्यवादी है। हमारा चित्त भाग्यवादी है और विज्ञान की सब धारणायें पुरुषार्थवादी हैं। भविष्य विज्ञान के हाथों में है और हम भाग्यवादी हैं तो उसके बीच कोई ताल--मेल नहीं बैठता। अगर तुम फेल हो जाते हो तो भाग्यवादी चित्त कहता है कि फेल होना बदा था इसलिए फेल हो गए, पास होना बदा होता तो पास हो जाते। भाग्यवादी चित्त अपने पर जिम्मेवारी नहीं लेता वह जिम्मेवारी, भाग्य पर, भगवान पर किसी और पर छोड़ने पर तैयार है, अमल में भाग्यवादी हमेशा अनुत्तरदायी है। पुरुषार्थवादी का दायित्व उसके ऊपर है अगर वह असफल हुआ है तो वह जिम्मेवार है और सफल होता है तो उसे जिम्मेवार होना होगा और किसी दूसरे पर जिम्मेवारी छोड़ना अनुचित है। कोई जिम्मेवार नहीं है किसी के लिए। तो अगर विज्ञान की भविष्य में संभावनाएं बढ़ानी हैं तो जिम्मेवारी व्यक्ति को लेनी पड़ेंगी और अगर पुरानी धारणा भाग्य का यदि हमारी काम करती चली जाती है, उसमें जिम्मेवारी व्यक्ति की कभी भी रही ही नहीं। अभी एक महिला मेरे पास आई थी। दस साल पहिले उसकी शादी हुई होगी वह पति से कलह करती रही होगी, संघर्ष होता रहा होगा, पति ने उसे पच्चीस बार कहा होगा कि यह असह्य है मेरे लिए मैं मर जाऊंगा,

अगर तूने ज्यादा मुझे परेशान किया। मैं तुझे कुछ बाधा नहीं देता तू मुझे बाधा मत दे। बाधाएं बड़ी छोटी छोटी थीं कि पति सिगरेट ना पिए। सिगरेट पीने से कोई नरक जैसे चला जायेगा। अब छोटी सी बकवास के पीछे बात यहाँ तक बढ़ी कि अभी दो महीने पहिले उसके पति ने छत पर से कूद कर आत्महत्या कर ली और यह भी झगड़ा चल रहा था कि वह घर आया उसके मुंह से उसको सिगरेट की बास आ गई उसने कहा फिर आपने सिगरेट पी ली तो उसने कहा अब कुछ कहना ठीक नहीं, वह सीधा छत से कूद गया और खतम हो गया। दस साल पहिले शादी हुई थी, दो बच्चे हैं अब वह मेरे पास आई और मुझसे कहने लगी कि मैं केवल एक ही बात जानने आई हूं कि उम्र तो निश्चित ही है ना जब जिसको मरना तभी मरना होता है। अगर आप मुझे यह समझायें कि जब जिसको मरना होता है तभी मरता है तो मेरा मन हलका हो जाये, नहीं तो मैं बहुत दुखी हूं मुझे ऐसा लगता है कि मैंने मार डाला है। मैं भी मुसीबत में पड़ गया, मैं उसे कहूं क्या, क्योंकि मार तो डाला है उसी ने। यह कहने का मतलब कि वह और दुखी हो जायेगी। वह बिल्कुल पागल हुई जा रही थी। क्योंकि एक ही सवाल है। मैंने उससे कहा कि तुझे दुःख तो होगा पर मार डाला है तूने। जब वह तुझे दस-पचास बार कह चुका था तो मैं यह पूछता हूं कि आदमी का सिगरेट पीते हुए जिन्दा रहना बेहतर है या आदमी का सिगरेट ना पीकर मर जाना। इन दोनों में क्या चुनाव है? मैं बिल्कुल तैयार हूं वो सिगरट नहीं शराब पियें, लेकिन जिन्दा हो जायें अब तो जिन्दा नहीं हो सकता। तब वह फिर बार-बार समझाये लेकिन लोग तो यही कहते हैं कि मौत समय पर समाप्त होती है। तू अपने मन को समझाना चाहती है। तू मेरे पास गलत जगह आ गई है। और ज्योतिषी के पास जा वह तुझे समझाएगा कि तेरा कोई हाथ नहीं। तू निश्चित हो जाएगी। पर तूने जो गलती की थी, वह तू भविष्य में जारी रखेगी, तू अपने बेटे की भी हत्या करवा सकती है, तेरा माइन्ड नहीं बदलता। फिर, कहीं तू दूसरी शादी भी करे तो उसकी भी हत्या करवा सकती है। क्योंकि अब उसे सभी यह समझा रहें हैं, बाप भी समझा रहे हैं मां भी समझा रही है उसमें तेरा क्या है मामला, तू तो निमित्त थी। उस आदमी को मरना था, मर गया।

तू नहीं होती तो कोई और निमित्त बनता। वह तो उम्र ही खत्म हो गई थी। अब तक यही धारणा थी। व्यक्ति को जुम्मेवार नहीं ठहराते थे, लेकिन हम जुम्मेवार हैं। और मजा ऐसा है कि जिन्दगी इतनी अंतर संबंध है कि अकेली ही जुम्मेवार नहीं है, अकेले अपने पति को मारने को। उस पत्नि को जिस मां-बाप ने पाला है वे भी जुम्मेवार हैं कि उन्होंने इस ढंग से उस लड़की को बनाया। जिस समाज में वह लड़की पैदा हुई वह भी जुम्मेवार है। क्योंकि समाजों ने उसे बेहूदे ख्याल दिये। सिगरेट पीना न कोई गुनाह है, बहुत ऐनोसेन्ट है सिगरेट पीना। एक निर्दोष नासमझी है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। वह आपकी ना समझी कही जा सकती है। पाप नहीं कहा जा सकता। और अगर वह किसी को नुकसान भी पहुंचा रहा है तो अपने को पहुंचा रहा है किसी को नहीं। लेकिन हमको ऐसी धारणाएं दी गई हैं कि नहीं वह बहुत भारी पाप है गुनाह है। तो वह अलग करना चाहिए। और मैं मानता हूं कि वह आदमी बहुत सीधा और सरल रहा होगा। नहीं तो इसको भी मार सकता था। वजह, मरने की सीधी बात है कि वह आदमी सीधा और सरल रहा होगा। चाहता तो इसको मार सकता था। इसको छोड़ सकता था, तलाक दे सकता था। तो हमारी धारणाओं का जो जाल है, उन धारणाओं के जाल में हमें देखना पड़ेगा कि हम सब जुम्मेवार हैं।

अगर हम जुम्मेवार हैं पूरी समाज के लिए—यदि कोई सड़क पर भीख मांग रहा है तो भी मैं जिम्मेवार हूं। हालांकि मेरा कोई सीधा संबंध नहीं है उससे, अगर एक आदमी भी पागल हो गया हो तो मैं जुम्मेवार हूं। मैं उसी समाज का हिस्सा हूं जिसने उसको पागल करने के लिए मजबूर कर दिया है—तो युवक क्रांतिदल की तीसरी

दृष्टि यह होगी कि हम व्यक्ति की रिसपान्सिबिल्टी जुम्मेवारी का बोध दें। व्यक्ति जुम्मेवार हैं - जिन्दगी है जैसी उसके लिए और जब तक व्यक्ति में जिम्मेवारी का बोध ना पैदा हो जाये तब तक व्यक्ति में आत्मा नहीं पैदा होती। जब एक व्यक्ति जितनी बड़ी जिम्मेवारी अपने ऊपर लेता है तब उसमें उतनी बड़ी आत्मा पैदा होती है। वह आदमी समझता है कि अगर वियतनाम में भी कुछ हो रहा है तो भी मैं जिम्मेवार हूं। तो मेरे पास इतनी बड़ी आत्मा हो जाती है कि वियतनाम तक फैल जाती है। अगर कहीं भी कुछ हो रहा है—आज अहमदाबाद में मुसलमानों की हत्या हो रही है तो मैं जिम्मेवार हूं, क्योंकि कल मैंने तुमसे कहा था कि मैं हिन्दू हूं, ये जिम्मेवारी है मेरी तो वहां जो हत्या हुई जो खून गिरा उसका मैं भी जिम्मेवार हूं। मैं तो अभी कहा अहमदाबाद में—अब्दुल गफ्फार खां वहां मेरे पहिले कह रहे थे कि मैं पक्का मुसलमान हूं और हर मुसलमान को पक्का मुसलमान होना चाहिए। जयप्रकाश वहाँ बोले, उन्होंने कहा था कि मैं हिन्दू हूं, और मुझे गौरव है। गांधी जी तो निरन्तर कहते थे कि मैं पक्का हिन्दू हूं—तो मैंने अभी वहां कहा कि कच्चे मुसलमान और कच्चे हिन्दू दोनों खतरनाक हैं—तो पक्के मुसलमान और पक्के हिन्दू सारे लोग हो जायें तो कितने खतरनाक होंगे। इसका हिसाब तो लगाओ। याने कच्चे इतना उपद्रव कर रहे हैं तो पक्कों के साथ बहुत मुश्किल है। लेकिन क्या यह जरूरी है कि कोई आदमी हिन्दू या मुसलमान पक्का या कच्चा हो, आदमी होना काफी नहीं। मैं तो कहता हूं कि चाहे जयप्रकाश नारायण हों या खान अब्दुल गफ्फार खां, इनकी भी सफेद चादर पर खून का दाग पड़ जाता है, जब ये कहते हैं कि मैं हिन्दू हूं या मुसलमान। तो जहां भी हिन्दू मुसलमान के नाम पर कुछ हो रहा है, उस नाम में ये भी भागीदार हो जाते हैं। यह भागीदारी का बोध हमारा यदि बढ़ जाये, जो बढ़ाना जरूरी है, जितना ज्यादा दायित्व का रिसपांसीबिलिटी का बोध बढ़ जाये, उतने ही बड़े व्यक्तित्व का, उतनी ही बड़ी आत्मा का तुम्हारे भीतर जन्म हो जाता है। और अब तक हमारे सोचने के जो ढंग हैं, उन सबमें हम जिम्मेवारी छोड़ने की चेष्टा करते हैं। मुल्क में कोई रिस्पान्सीबिल नहीं है अब। अगर तुम एक मिनिस्टर को कहो कि यह गल्ती हुई तो वह कहता है सेक्रेटरी को कहिए, सेक्रेटरी से कहो तो वह कहता है हैडक्लर्क को कहिए। आप पूरे मुल्क में घूम लो आप उस आदमी को नहीं पकड़ पाओगे वह जो जिम्मेवार है— कोई जिम्मेवार नहीं, आज जो हमारे मुल्क की इतनी ज्यादा असंगत स्थिति है अराजक, उसका कुल कारण है कि कोई जिम्मेवार नहीं। जिम्मेवारी का बोध ही नहीं है—तो अगर हम बीस सालों में हिन्दुस्तान के युवक में एक दायित्व का बोध नहीं पैदा कर सके तो यह मुल्क डूब जायेगा, और डूब रहा है। हर आदमी इस चेष्टा में लगा है कि दायित्व किसी दूसरे आदमी पर कैसे सौंप दूं। वह पकड़कर बतला दे कि यह जिम्मेवार है और वह आदमी किसी और को पकड़कर बतला दे कि वह जिम्मेवार है। और अपने से कमजोर को बतलाते चले जाते हैं। और कमजोर बतलाते चले जाते हैं। कमजोर लौटकर तो आपसे नहीं कह सकता है। अगर मिनिस्टर सेक्रेटरी को कह सकता है तो सेक्रेटरी लौटकर तो नहीं कह सकता वह डिप्टी सेक्रेटरी को ही बता सकता है और आखिर राष्ट्रपति से लेकर चपरासी तक छोटे को और छोटे को हम जिम्मेवारी सौंपते चले जाते हैं। उसका कारण है, उसका कारण आज पैदा हो गया यह नहीं, हमारा पुराना चिन्तन ही कहीं भाग्य, कहीं भगवान, कहीं विधि, कहीं विधाता पर छोड़ने का था, कोई जिम्मा लेने का आदी नहीं था।

तीसरा काम मेरी दृष्टि में यह है कि यु०क्रां० दल दायित्व का एक बोध एक एक युवक में दायित्व का बोध पैदा कर सके कि मैं जिम्मेवार हूं और अगर हम हिन्दुस्तान में कुछ लाख युवकों में ही यह बोध पैदाकर सकें कि मैं जिम्मेवार हूं तो हम एक नये समाज के निर्माण के लिए बुनियादी आधार रख देंगे। क्योंकि जो जिम्मेवार है वह यह सोचके जीता है, वह यदि एक शब्द भी बोलता है तो सोचकर बोलता है, उसके परिणाम क्या होंगे। फिर इतनी छोटी चीजें इतने बड़े परिणाम लातीं हैं कि हमें अंदाज नहीं। मैं एक छोटी सी घटन

से तुम्हें कहूं सारी दुनिया का इतिहास अलग हो जाये। नेपोलियन बच्चा है, लेटा है अपने कमरे में कि इतने में एक बिल्ली उसकी छाती पर चढ़ गई, नौकरानी बाहर थी, भागी हुई आयी, बिल्ली को अलग कर दिया लेकिन वह छः महिने का बच्चा घबड़ा गया। बिल्ली ने छाती पर पंजा रख लोंच दिया था, लेकिन नुकसान नहीं हो गया। लेकिन सदा के लिए नेपोलियन बिल्ली से भयभीत हो गया। शेर से लड़ सकता था बाद में लेकिन बिल्ली देख कर कंप जाता था। क्योंकि वह छः महीने का बच्चा हो जाता, जैसे ही बिल्ली सामने आती। और फिर उसके वश की बात न थी, वह उसके अचेतन गहरे मन में बैठ गई बात थी और जिस लड़ाई में एक ही लड़ाई में वह हारा, उसमें दुश्मन सेनापति नेलसन ७० बिल्लियां बांधकर लाया था। यह पता लग गया था कि वह बिल्ली से डरता था और किसी तरह से जीतने का कोई उपाय ना रहा तो बिल्लियां बांधकर लाई गई थीं। जैसे ही उसने बिल्लियां देखीं उसने अपने बगल के सेनापतियों से कहा कि मेरे होश खो गये मैं लड़ ना सकूँगा, मेरे तो हाथ-पैर कंप रहे हैं क्योंकि बिल्ली को तो मैं देख ही नहीं सकता। अब तुम सम्हालो, वह पहिली लड़ाई थी और आखिरी जिसमें वह हारा। अगर नेपोलियन जीतता तो दुनियाँ की कहानी कुछ दूसरी होती, अगर इंगलेण्ड हारता तो हो सकता था इंगलेण्ड का राज्य हिन्दुस्थान में कभी न होता और महात्मा गांधी कभी पैदा न होते। वह एक बिल्ली जो चढ़ गई नेपोलियन की छाती पर उसने दुनिया का इतिहास पलट दिया। छोटी छोटी घटनाएं बहुत गहरे परिणाम ले आती हैं। और दायित्व का बोध ना हो तो हम कुछ भी किए चले जाते हैं जिनके परिणाम क्या होगें, पता नहीं, मैं मर जाऊंगा, लेकिन जो मैं कहूंगा उसकी ध्वनियाँ करोड़ों-करोड़ों वर्षों तक आदमी को प्रभावित करती रहेंगी। तुम नहीं रहोगे, लेकिन रास्ते पर कैसे चले थे, तुमने रास्ते पर क्या किया था इसके परिणाम ऐतिहासिक हो सकते हैं। कोई छोटा नहीं है कोई बड़ा नहीं है अतएव व्यक्ति इस बड़े जाल में दायित्ववान है और जो व्यक्ति दायित्व-प्रिय हो जाता है वह क्रांतिकारी हो सकता है, जो व्यक्ति समझता है मेरा दायित्व है वही क्रांतिकारी हो सकता है। अंतिम बात अभी जो क्रांति है वह दूसरे पर दायित्व डालने वाली है। इसलिये मैं उसे क्रांतिकारी नहीं कहता। गरीब कहता है अमीर जिम्मेदार है इसलिये मैं जिम्मेदार नहीं हूं। यह बात झूठ है। बात सरासर झूठ है अकेला अमीर ही जिम्मेदार नहीं है। गरीब भी जिम्मेदार है, गरीब का सारा ढंग गरीब होने का है इसलिये वह जिम्मेदार है। इसलिए वह जिम्मेदार है। वह सब भांति से जो भी करता उसे उस भांति गरीब बनाये रखता है। और इसलिए जिम्मेवारी दोनों की है। हम कहते थे कि हमारी सब मुसीबतों के लिए अंग्रेज जिम्मेदार हैं। २० साल से कौन है जिम्मेदार ? एक मुसीबत नहीं हटी सब मुसीबतें बढ़ गई। हमारे सब नेता झूठी बकवास करते रहे। मुसीबतों के लिए अंग्रेज जिम्मेदार थे, गरीब थे, तो अंग्रेज जिम्मेदार थे। बीमार थे तो अंग्रेज जिम्मेदार थे। अशिक्षा थी तो अंग्रेज जिम्मेदार थे। उपद्रव थे तो अंग्रेज जिम्मेदार थे। जो भी था अँग्रेज जिम्मेदार था। अब अँग्रेज नहीं है। अब बीस साल से कौन जिम्मेदार है ? अब हम बड़ी मुसीबत में पड़ गये। अब कांग्रेस जिम्मेदार है। अब कांग्रेस टूटी जाती है। तब फिर कौन जिम्मेदार होगा। अब हम किसी और को जिम्मेदार पकड़ लेंगे। लेकिन यह बोध हमें कभी नहीं आयेगा कि हम जिम्मेदार हैं जब तक बोध नहीं आता तब तक कुछ हल नहीं हो सकता है। वह झूठी बात है कि अँग्रेज जिम्मेदार थे। क्योंकि अगर वह जिम्मेदार थे, और सोचा था कई लोगों ने १६ अगस्त को सुबह उठेंगे तो सारी दुनिया सोने की हो जायेगी। कि अँग्रेज तो चले गये सब बात खतम, सब बीमारियां खत्म। आज हमको पता चला कुछ न हुआ। जो बीमारियाँ उनके वक्त कभी न थीं वे सब की सब प्रकट हो गईं। अगर वह जिम्मेदार थे तो सिर्फ इस बात को जिम्मेदार थे कि हमारी पूरी बीमारियों को भी स्वतंत्रता न थी। उनका बंदूक का कुन्दा बहुत मजबूत था। वह हमारी सब बीमारियों को प्रकट न होने देते थे। उनका घेराव करना आसान न था। उनके साथ उपद्रव आसान न था क्योंकि भूंभ

डालते। लेकिन जिसको हमने वोट दी है वही हमारे ऊपर बैठा है, तो अार जरा गोलो चलाई तो अगली दफे वोट नहीं मिलेगी। तो जो भय था वह भी बिदा हो गया। अब हमारी सारी बीमारियां प्रकट हो गईं। अभी हम कहते थे काँग्रेस जिम्मेदार है। अब काँग्रेस खत्म हो गई, जिन प्रदेशों में काँग्रेस नहीं हैं उनकी हालत बदतर है। बेहतर नहीं। नहीं मैं यह कह रहा हूं जब तक हमें यह ख्याल में नहीं आता कि हम जिम्मेवार हैं, तब तक ठीक ठीक नहीं हो सकता। और जिसको यह ख्याल आ जाता है कि हम जिम्मेवार हैं वह क्रांति-कारी होने का हकदार हो जाता है। हकदार इसलिए हो जाता है कि जिम्मेवारी दूसरे पर नहीं टाल रहा है। जिसने दूसरे पर जिम्मेवारी टाली उसकी क्रांति, विनाश-कारी हो गई। उसकी क्रांति हमेशा विध्वंश की होगी। वह कहेगा दूसरे को मिटा डालो सब ठीक हो जायेगा। जिसने जिम्मेवारी नही टाली उसकी क्रांति सृजनात्मक होगी। मैं बदलूँ तो सब ठीक हो जायेगा। **तो युवक क्रांति दल इस अर्थों में क्रांतिकारी होना चाहता है कि हमारी जिम्मेवारी है।** माना कि अतीत जो था हमने निर्मित नहीं किया था लेकिन भविष्य हम निर्मित करेंगे। और बीस साल बाद जैसी दुनियां होगी उसके हम जिम्मेवार होंगे। और २० साल बाद जैसी दुनियाँ होगीउसे आज बनाना हमें शुरू कर देना होगा। तब वह बन पायेगी नहीं तो नहीं बन पायेगी। ये तीन बातें है। लेकिन और भी बातों पर धीरे धीरे सोचना जरूरी है। इन तीन सूत्रों पर ख्याल रखके काम शुरू करें। ताकि २० साल बाद जैसा कि बीस साल लगते हैं, एक पीढ़ी को निर्मित होने में बदलने और बनने में हम इस असहाय रोती हुई पीड़ित परेशान, स्थिति में न हों। हालत आज तो बहुत ही बुरी है। और वह ठीक होगी इसकी कोई आशा नहीं बधती क्योंकि हम ठीक करने को कुछ कर नहीं रहे हैं। अभी हम जो कर रहे हैं वह और भी बुरा करने का रास्ता बन रहा है। क्योंकि हमारे मूल मस्तिष्क ही साफ नहीं हैं। Confused हैं। और यदि युवक क्रांति दल विचार की एक तीव्रता, चिंतन की एक क्षमता जिम्मेवारी का एक बोध, क्रांति का एक भाव पैदा कर सके तो पर्याप्त है। उस पर बुनियाद रखी जायेगी अच्छी। और एक अच्छे समाज की। इस दिशा मे कुछ कर सकें, इस आशा से युवक क्रांति दल की कल्पना है। कि ऐसा कुछ हो सके। हो सकता है, और कभी यह न सोचें कि बहुत लोग करें तब हो सकता है। दुनियां में थोड़े से लोग कुछ कर पाते हैं, पर करने का संकल्प हो। स्पष्ट बोध हो क्या करना है? अपने को डुबा देने का साहस हो तो बहुत थोड़े लोग दुनियां को चलाते हैं। मनुष्य के इतिहास से सौ-दो सौ लोगों के नाम अलग कर दें तो कोई इतिहास नहीं है। मगर वे ही लोग जिसे कोई ख्याल पकड़ लेता है, वह ख्याल के पीछे पागल होने की क्षमता रखते हैं। यह दुनियां को बदल पाते हैं। आशा करता हूं इस दिशा में सोचोगे, हवा फैलाओगे, और कुछ करता संभव हो सकेगा। वह जो करता है परमात्मा उनके साथ है, जगत् की सारी शक्तियां उसके साथ हैं।

●●●

सत्य एक अंतर्दृष्टि

इसके पूर्व कि हम परमात्मा को जानें या कि स्वसत्ता को, या कि सत्य को ..... हमें उस काल्पनिक व्यक्ति को अग्निसात करना ही होगा जोकि हमने स्वयं अपने ऊपर ओढ़ लिया है।

क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगता कि आप एक नाटक कर रहे हैं? क्या कभी ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि आप भीतर कुछ हैं, और बाहर कुछ हैं? क्या किसी अमूर्च्छित क्षण में इस वंचना का बोध आपको पीड़ा नहीं देता है? यदि आपमें इस संबंध में प्रश्न उठता है और पीड़ा उठती है तो वही संभावना है जो आपको नाटक के बाहर ले जा सकती है.....रंगमंच से उस पृष्ठभूमि में जहां आप अभिनय के पात्र नहीं, बल्कि स्वयं आप हैं।

आचार्य श्री के आगामी देश व्यापी कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
५ मार्च ७०	बंबई	—	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केन्द्र, रुम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी० एन० रोड, बंबई : १ फोन: २६४५३०
६, ७, ८, एवं ९ मार्च७०	राजकोट	सत्संग	श्री आर० अंबानी एंड कम्पनी, जीवन जागृति केन्द्र, जीमखाना के सामने राजकोट [सौ०]
१० मार्च	बंबई	—	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केन्द्र, बंबई १
१५ एवं १६ मार्च ७०	जबलपुर (शहीद (स्मारक भवन	प्रवचन	श्री भीकमचंद, जीवन जागृति केन्द्र, ३८९, हनुमानताल, जबलपुर। फोन० २९५७
२० मार्च ७०	दिल्ली		श्री लाला सुन्दरलाल जी, जीवन जागृति केन्द्र, ४१ यू० ए० बंगलो रोड जवाहरनगर, दिल्ली–६, फोन:२२७६५५
२१, २२, २३ एवं २४ मार्च ७०	लुधियाना	सत्संग	श्री कपिल मोहन, जीवन जागृति केंद्र क्वालिटी आइसक्रीम कं०, ९०–ए, इंडस्ट्रियल एरीआ, लुधियाना
२५ मार्च ७०	दल्ली	—	श्री लाला सुन्दरलाल, जीवन जागृति केन्द्र, दिल्ली–६

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित

नई साज–सज्जा में

आचार्य श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति–शिखा

संपादक : श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक

(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें)

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,

डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१

Phone : 264530

आचार्य श्री का प्रकाशित साहित्य

	हिन्दी	गुजराती	मराठी
१. साधना पथ	३।००	३।००	३।००
२. क्रांति बीज	३।००	२।५०	२।५०
३. सिंहनाद	१।५०	१।२५	३।००
४. मिट्टी के दिए	३।००	३।५०	—
५. पथ के प्रदीप	३।००	३।००	८।००
६. संभोग से समाधि की ओर	३।५०	३।५०	—
७. आचार्य रजनीश समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि	७।५०	—	—
८. मैं कौन हूं ?	२।००	२।००	—
९. नए संकेत	२।००	१।७५	—
१०. अज्ञात की ओर	२।००	२।००	—
११. सत्य की खोज	३।००	—	—
१२. अंतर्यात्रा	३।५०	—	—
१३. शांति की खोज	२।००	—	—
१४. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१।२५	१।५०	—
१५. सूर्य की ओर उड़ान	१।००	१।००	—
१६. प्रेम के पंख	०।७५	०।७५	०।७५
१७. कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१।००	०।७५	—
१८. अमृत कण	०।६०	०।५०	०।५०
१९. अहिंसा दर्शन	०।५०	०।५०	०।५०
२०. नई दिशा, नई बात	०।३०	—	—
२१. न आंखों ने देखा न कानों ने सुना	०।१५	—	—
२२. क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०।३०	—	—
२३. बिखरे फूल	०।३५	—	—
२४. जीवन और मृत्यु	—	१।००	—
२५. नए मनुष्य के जन्म की दिशा	०।७५	०।७५	—
२६. अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गांधी और मेरी चिंता)	५।००	—	—

प्राप्ति स्थल :

[१] जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी. एन. रोड, बंबई : १

[२] मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७।

[३] स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर।

[४] आर. अंबानी एंड कं०, अपोजिट : जिमखाना, राजकोट।

[५] चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा, बड़ौदा।

[६] मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा वाराणसी।

[७] मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना।

[८] भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जलंधर शहर।

[९] नरसिंह भाई पटैल, सहकारी मुद्रणालय, कोठारी मार्ग, सुरेंद्रनगर।

[१०] सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद।

[११] बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद।

[१२] सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर—२

[१३] हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

[१४] सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर।

[१५] युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर।

[१६] श्री आर. के. पुंगालिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–२

[१७] श्री महेन्द्र कुमार मानव, विन्ध्याचल प्रकाशन, छतरपुर (म० प्र०)

[१८] श्री सौभाग्यचंद्र तुरखिया, २ प्रभात सोसाइटी, सुरेन्द्र नगर।

धूम्रपान के अनोखे आनंद

के लिए सदा बहार

बिड़ी नं २२

(वर्षों से हम आपकी सेवा में

अपनी श्रेष्ठतम सेवायें प्रस्तुत कर रहे हैं)

निर्माता : वृजलाल मणिलाल एंड कं,
गोंदिया (म. प्र.)

हमारे विशेष आकर्षण : उचित मूल्य पर नवीनतम आरामदायक--

सोफा-कम-बेड तथा

बुडन फर्नीचर के

निर्माता :

अशोक फर्नीचर मार्ट

गंजोपुरा मेन रोड, जबलपुर, म. प्र.

"साक्षी चेतना ही व्यक्तित्व को निखारती है।"

नगर का गौरवशाली प्रतिष्ठान

श्री अरविन्द वस्त्र भंडार

फेन्सी कपड़े के व्यौपारी

जवाहर चौक, सुरेन्द्र नगर (गुजरात)

उत्तम तम्बाकू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

मोहनलाल हरगोविंददास

जबलपुर म० प्र०

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे ।

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, कमला नेहरू नगर, जबलपुर ।

मुद्रण स्थल : जबलपुर को-आपरेटिव प्रिंटिंग प्रेस, गोलबाजार, जबलपुर ।

वर्ष : १ ।। अंक : १७ ।। १ मार्च १९७० ।। मूल्य : एक प्रति : ०.६० न० पै० ।।

।। वार्षिक : १२ रु० ।।

1547.

शीघ्र प्रकाशित हो रही है : डॉ० रामचन्द्र प्रसाद, एम०-ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट् की अनूठी अंग्रेजी कृति

आचार्य रजनीश : दि मिस्टिक आफ फीलिंग

ACHARYA RAJNEESH : THE MYSTIC OF FEELING

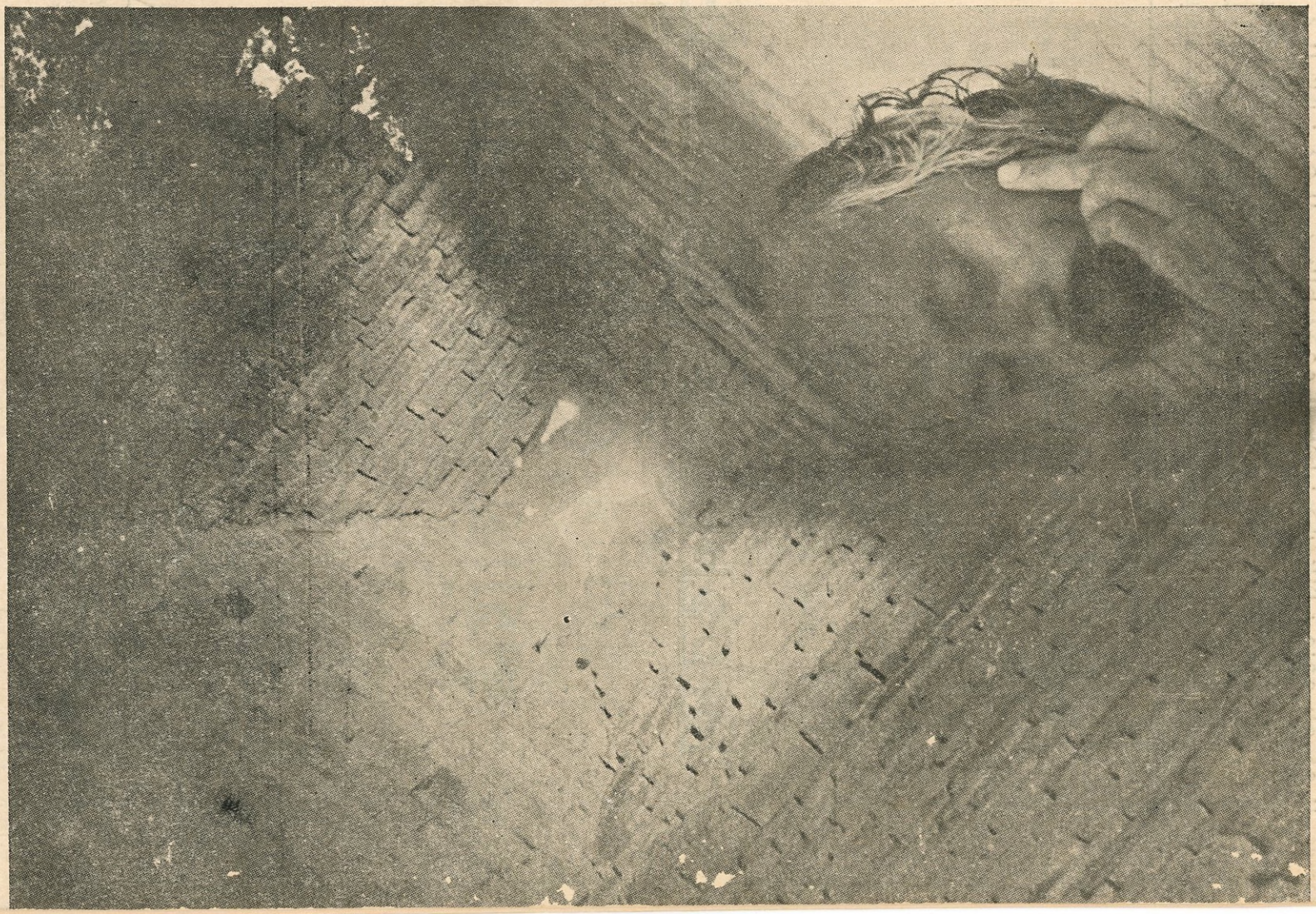

[चित्र : दीनूरावल, राजकोट]

प्रकाशक हैं : मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली-६
दिल्ली । पटना । वाराणसी